मज़दूर बिगुल

मासिक समाचारपत्र पूर्णांक 1 ● वर्ष 1 अंक 1
नवम्बर, 2010 ● तीन रुपये ● बारह पृष्ठ

पूँजीवादी लूट इससे ज़्यादा नग्न नहीं हो सकती!
मेहनतकशों की तबाही-बर्बादी इससे भयंकर नहीं हो सकती!

हम अब और तमाशबीन नहीं बने रह सकते!

एक ही रास्ता—मज़दूर इंक़लाब! मज़दूर सत्ता!

वैसे तो पूँजीवादी समाज में हर रोज़ ही हम ऐसी घटनाओं के गवाह बनते हैं जो पूँजीवादी समाज की सच्चाई को हमारी आँखों के सामने उजागर करती हैं, लेकिन पिछले कुछ महीनों के दौरान देश के पैमाने पर पूँजीवादी व्यवस्था जिस क़दर नंगी हुई है, उसे बताने के लिए अब रंग-छन्द की ज़रूरत नहीं रह गयी है। आज इस पूरी आदमख़ोर मुनाफ़ाख़ोर व्यवस्था की क्रूर और अमानवीय सच्चाई सीधे हमारे सामने खड़ी है – एकदम निपट नंगी सच्चाई। और इसलिए इसे उतने ही सीधे शब्दों में आपके सामने रख देना ही मेहनतकशों के अख़बार के तौर पर 'बिगुल' आज सबसे ज़रूरी समझता है। पिछले कुछ महीनों में हुई घटनाओं पर एक नज़र डालते ही यह साफ़ होने लगता है कि पूँजीवादी शासक वर्ग अब अपनी सड़ी-गली व्यवस्था की घिनौनी सच्चाइयों पर पर्दा डालने की भी ज़रूरत नहीं महसूस करता है। वह जान चुका है कि समूची पूँजीवादी सभ्यता की घृणित सच्चाई अब जनता के सामने एकदम साफ़ है। इसे छिपाने की कोशिश करना बेकार है। अब उसकी उम्मीदें पूँजीवाद को लेकर आम जनता के बीच कोई भ्रम फैलाने पर नहीं टिकी हैं। अब उसकी उम्मीदें इस बात पर टिकी हैं कि जनता पस्तहिम्मती, पराजयबोध और हताशा में जीते हुए इस अफ़सोसनाक हालत को ही नियति समझ बैठेगी और इसे स्वीकार कर लेगी। कहने की ज़रूरत नहीं है कि यह उसकी ग़लतफ़हमी है। आइये कुछ प्रातिनिधिक घटनाओं पर एक नज़र डालें।

पहली घटना – हाल ही में देश के सर्वोच्च न्यायालय ने देश की सरकार को इस बात के लिए काफ़ी खरी-खोटी सुनायी कि एक ओर तो लोग भूख और कुपोषण से मर रहे हैं और दूसरी ओर अनाजों में हज़ारों टन अनाज सड़ गया। हम सभी जानते हैं कि यह कोई नयी बात नहीं है। हर

● सम्पादकीय अग्रलेख

साल भारतीय खाद्यान्न निगम के गोदामों में हज़ारों टन अनाज या तो सड़ जाता है, या उसे चूहे खा जाते हैं या फिर स्वयं न्यायालय ही उसे जलाने का निर्देश दे देता है। हर साल ही देश में लाखों लोग भूख और कुपोषण के चलते दम तोड़ देते हैं। हर बार ही सर्वोच्च न्यायालय सरकार को ऐसी झिड़कियाँ देता है। और किसी साल सरकार ग़रीबों में निशुल्क अनाज वितरण नहीं करती है। निश्चित तौर पर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश भी इस बात को अच्छी तरह समझते हैं कि सरकार ऐसा कुछ नहीं करेगी। क्योंकि यह पूँजीवादी व्यवस्था में सम्भव नहीं है। निजी मुनाफ़े की एक ऐसी व्यवस्था में जिसमें आदमी की जान समेत हर चीज़ बेची और ख़रीदी जाती हो, वहाँ यह सम्भव नहीं हो सकता क्योंकि मुफ़्त अनाज बाँटने से क़ीमतें गिरेंगी और पूँजीपति वर्ग को घाटा होगा। इसलिए लोग भूखे मरते रहते हैं लेकिन अनाज को बाँटा नहीं जाता। एक पूँजीवादी न्यायपालिका में बैठा न्यायाधीश इस सीधे से तर्क को न समझता हो, ऐसा मुमकिन नहीं है। लेकिन यह समझने के बावजूद वह

(पेज 11 पर जारी)

साथियो!

'मज़दूर बिगुल' का पहला अंक आपके हाथों में है। किन्हीं अपरिहार्य कारणों से 'नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल' के प्रकाशन को स्थगित करना पड़ा है। 'मज़दूर बिगुल' उन्हीं राजनीतिक विचारों का प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रतिबद्ध है जिनका प्रतिनिधित्व 'नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल' कर रहा था। हम उम्मीद करते हैं कि जिस प्रकार का सहयोग और साथ सुधी पाठक उसे दे रहे थे, वही वे 'मज़दूर बिगुल' को देना जारी रखेंगे। 'मज़दूर बिगुल' नई समाजवादी क्रान्ति की सोच को लेकर काम करता रहेगा।

– सम्पादक मण्डल

अयोध्या फ़ैसला : मज़दूर वर्ग का नज़रिया

(पहली किश्त)

28 सितम्बर को अयोध्या विवाद को लेकर इलाहाबाद उच्च न्यायालय की तीन सदस्यों वाली लखनऊ बेंच ने अपना फ़ैसला सुना दिया। इस फ़ैसले के मुताबिक़ इस बेंच के न्यायाधीशों ने 2-1 के बहुमत से यह तय किया कि अयोध्या की 2.77 एकड़ की विवादित भूमि को तीन हिस्सों में बाँटकर तीनों पक्षों को दे दिया जायेगा। यानी, एक-तिहाई भूमि हिन्दू पक्ष को, एक-तिहाई भूमि निर्मोही अखाड़ा को और एक-तिहाई भूमि सुन्नी वक़्फ़ बोर्ड को मिलेगी। व्यावहारिक तौर पर, दो-तिहाई भूमि हिन्दू पक्ष को और एक-तिहाई मुसलमान पक्ष को मिली है। लेकिन जिस स्थान पर बाबरी मस्जिद की प्रमुख गुम्बद थी, उसे हिन्दुओं को सौंपने का निर्णय किया गया है। उसे न्यायालय ने 2-1 के बहुमत से राम का जन्मस्थान माना है! राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने तमाम आनुषंगिक संगठनों के साथ इस बात का प्रचार कर रहा है कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की रिपोर्ट के आधार पर अदालत ने उस जगह को राम का जन्मस्थान माना है। लेकिन वास्तव में पुरातत्व विभाग की रपट ऐसा कुछ भी नहीं कहती है। उल्टे न्यायाधीशों ने अपने फ़ैसले में स्पष्ट रूप से माना है कि वे उसे राम का जन्मस्थान इसलिए मान रहे हैं क्योंकि

● अभिनव

कई दशकों से हिन्दू उसे राम का जन्मस्थान मानते हैं। यानी निर्णय का आधार ऐतिहासिक और पुरातात्विक तथ्य नहीं, बल्कि धार्मिक बहुसंख्या की आस्था को बनाया गया है। इस लेख में हम अयोध्या के फ़ैसले और उसके बाद के घटनाक्रम पर मज़दूर वर्ग के दृष्टिकोण को साफ़ करेंगे। इस मुद्दे पर एक साफ़ सर्वहारा नज़रिया रखना मज़दूर वर्ग की वर्ग एकता के लिए बेहद ज़रूरी है।

क्यों नहीं भड़का इस बार कोई दंगा?

इस फ़ैसले के आने से पहले देश भर में सुरक्षा व्यवस्था को सरकार ने मज़बूत करने की क़वायदें शुरू कर दी थीं। सभी जानते थे कि इस बार अयोध्या से जुड़े इस अहम मसले पर कोई दंगा भड़का पाना या देश में कोई उथल-पुथल पैदा कर पाना सम्भव नहीं है। अयोध्या के मसले पर जो अधिकतम धार्मिक ध्रुवीकरण किया जा सकता था वह 1990 से 1992 के दौर में भाजपा करके देख चुकी है। 1992 से लेकर 2010 के बीच सरयू में काफ़ी पानी बह चुका है। अयोध्या को लेकर अब वैसी लहर पैदा कर पाना सम्भव नहीं था। इस बात को संघ गिरोह और भाजपा अच्छी तरह समझ रहे थे। इसीलिए फ़ैसला आने के बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक मोहन भागवत ने एक काफ़ी सहिष्णु और उदार दिखने वाला बयान दिया और कहा कि यह किसी की हार या जीत नहीं है। लेकिन उसके साथ अपनी साम्प्रदायिक फ़ासीवादी विचारधारा को घुसेड़ने से भागवत बाज़ नहीं आये। उन्होंने कहा कि राम हमारा राष्ट्रीय प्रतीक हैं और अब मुसलमानों को भी वैमनस्य भाव भुलाकर एक भव्य राम मन्दिर के निर्माण में सहयोग करना चाहिए। लेकिन इन सबके बावजूद यह सच है कि अब मन्दिर मुद्दे को लेकर कोई बड़ा खेल खड़ा कर पाना सम्भव नहीं रह गया है। जनता संघ गिरोह के मन्दिर प्रेम को पिछले दो दशकों में

(पेज 5 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

बादाम उद्योग मशीनीकरण की राह पर

पिछले साल हुए बादाम मज़दूरों की सोलह दिनों की हड़ताल दिल्ली के असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की बड़ी हड़ताल थी, जिसकी चर्चा तमाम अख़बारों और बिगुल के पुराने अंकों में हुई भी। पूर्वी दिल्ली के करावलनगर इलाक़े में बादाम के प्रोसेसिंग (तोड़ना, साफ़ करना) का काम होता है। पूरी दिल्ली के बादाम उद्योग का लगभग 80 फ़ीसदी यहाँ तैयार होता है। अमेरिका, आस्ट्रेलिया और कनाडा से बादाम प्रोसेसिंग के लिए भारत आता है। बादाम मज़दूर हाथों से तोड़कर बादाम की गिरी निकालने का काम करते हैं। इस काम के दौरान निकलने वाला बुरादा स्वास्थ्य के लिए बेहद ख़तरनाक है। ज़्यादातर मज़दूर बिहार के अत्यन्त पिछड़े इलाक़े से हैं। अधिकांश अनपढ़ मज़दूर इस ख़तरनाक काम को करने के लिए मजबूर हैं क्योंकि जिस जगह से वे लोग आये हैं, वहाँ स्थिति और भी दयनीय है। बेहतर ज़िन्दगी की तलाश में आये इन मज़दूरों की ज़िन्दगी में घोर अँधेरा है। जो लोग बाज़ार से बादाम ख़रीदकर खाते हैं या उससे बनी चीज़ों का इस्तेमाल करते हैं, वे सपने में भी नहीं सोचते होंगे कि इनको बनाने वालों की ज़िन्दगी नर्क के समान है। 8 फ़ुट बाई 10 फ़ुट के कमरे में 6 से 7 आदमी जानवरों की तरह रहने को मजबूर हैं। उसमें भी कहीं बिजली की व्यवस्था है तो कहीं नहीं। खाना बनाने के लिए ये लोग बादाम का छिलका का उपयोग करते हैं। वो भी गोदाम मालिक 30 रुपये से 35 रुपये बोरी मज़दूरों को बेचता है जोकि मुफ्त के माल के तौर पर उसके यहाँ रहता है। जिस जगह पर बादाम तोड़ने और साफ़ करने का काम किया जाता है, उस जगह न तो कोई पेशाबघर होता है, न ही शौचालय। महिलाओं को ऐसी स्थिति में बेहद दिक्क़त का सामना करना पड़ता है, वे तमाम बीमारियों का शिकार हो जाती हैं, मज़दूरों के छोटे-छोटे बच्चे भी उसी गोदाम में रहते है जो उनके स्वाथ्य के लिए बेहद ख़तरनाक है। सफ़ाई के दौरान निकलने वाली बादाम के छिलके की धूल बेहद ख़तरनाक होती है। क्योंकि बादाम पहले तेज़ाब में भिगोया जाता है ताकि आसानी से टूटे। तेज़ाब से भरी हुई धूल फेफड़ों के लिए बेहद ख़तरनाक है। कुछ मज़दूरों की मौत भी इसी वजह से पहले हो चुकी है। काम की जगह स्वास्थ्य के लिए बेहद ख़राब है। मज़दूर जो कुछ कमाई करते हैं उसका एक विचारणीय हिस्सा बीमारियों के इलाज में निकल जाता है। मज़दूरों के इस कष्टपूर्ण जीवन को ये मालिकान तब और दूभर बना देते हैं, जब वे उससे बेईमानी करते हैं। एक मज़दूर पूरे दिन में दो कट्टा (बोरी) ही बादाम तोड़ पाता है, जिसका 60 रुपये प्रति कट्टा के दर से 120 रुपये मिलते हैं। 120 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से इस महँगाई में जी पाना कितना कठिन है कोई भी हिसाब लगा सकता है। सही समय पर पैसा न मिलने और उसमें मालिकों द्वारा बेईमानी करने के कारण समय-समय पर मज़दूरों और मालिकों के बीच विवाद होता रहता है। आन्दोलन के बाद भी मालिकान से पैसा निकलवाने के लिए मज़दूरों को लगातार यूनियन के नेतृत्व में संगठित होकर लड़ना पड़ता है। पिछले साल के आन्दोलन के बाद छोटे-छोटे आन्दोलनों का सिलसिला चलता रहा है। लड़ाइयों से मज़दूरों को संगठित होकर लड़ने की ताक़त का एहसास हुआ है।

इसी इलाक़े में अन्य पेशों से जुड़े मज़दूर भी बादाम मज़दूरों की संगठित लड़ाई की ताक़त को देखकर अन्याय के ख़िलाफ़ संगठित हो रहे हैं। इलाक़े में संगठित हो रहे विभिन्न पेशे से जुड़े मज़दूरों की ताक़त से मालिकान पर दबाव बनाना ज़्यादा कुशलता से किया जा सकता है।

पिछले कुछ दिनों से मालिकों ने यह भय फैलाने की कोशिश की हैं कि मशीनों के आने का कारण मज़दूरों का हड़ताल करना है। कई गोदामों में मशीनों के चलने से कुछ मज़दूरों को काम मिलने में कठिनाई हो रही है। हालाँकि अभी कुछ ही गोदामों पर मशीन से काम हो रहा है और वह भी सफलतापूर्वक नहीं। फिर भी आने वाले दिनों में मशीनों का आना तय है और इसका सफलतापूर्वक काम करना भी तय है। मालिकान मज़दूरों को मशीनों का भय दिखाकर हड़ताल या अन्य आन्दोलन करने से रोकना चाहते हैं। पिछड़ी चेतना और अधिकांशत अनपढ़ होने के कारण मालिकान कुछ मज़दूरों को अपने बहकावे में ले आते हैं। फिर भी ज़्यादातर मज़दूर इस को अच्छी तरह समझते हैं कि मशीनों को भी मालिक ख़ुद नहीं चलायेंगे। उन्हें भी मज़दूर ही चलायेगा और मशीनीकरण लम्बी दूरी में इस उद्योग का मानकीकरण करेगा।

मज़दूरों की व्यापक आबादी को भी यह समझना होगा कि मशीनीकृत होने से यह उद्योग ज़्यादा संगठित होगा और मज़दूरों को उनका मज़दूरी कार्ड से लेकर अन्य अधिकार मिलने का वैधानिक आधार तैयार होगा तथा फ़ैक्टरी एक्ट के तहत आने वाली सुविधाएँ मिलेंगी। निश्चित रूप से यह पूँजीवादी उद्योग की एक नैसर्गिक प्रक्रिया है और इसमें कई मज़दूर बेकार भी होंगे। लेकिन जो आबादी मशीनीकरण के बाद स्थिरीकृत होगी, वह लड़ने के लिए तुलनात्मक रूप से बेहतर स्थिति में होगी। तब जाकर नये सिरे से लड़ाई शुरू होगी और श्रम क़ानून के तहत मिलने वाले सभी अधिकारों की लड़ाई लड़ी जायेगी। लेकिन असल मायने में मज़दूरों की मुक्ति इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था को ध्वस्त करके ही मिलेगा।

नवीन,
बादाम मज़दूर यूनियन
करावलनगर, दिल्ली

21वीं सदी का मज़दूर आन्दोलन...

(पेज 7 से आगे)

स्थिति पैदा हो इसकी उम्मीद कम ही है। एकध्रुवीय विश्व के सभी सिद्धान्त जो काउत्स्की के 'सुप्रा-इम्पीरियलिज़्म' की थीसिस की ओर ले जाते हैं, आज ध्वस्त हो चुके हैं और एक बहुध्रुवीय विश्व में चल रही साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा सबके सामने है। आज का साम्राज्यवाद पहले से अधिक मरणासन्न हो चुका है। लेकिन क्रान्तिकारी आन्दोलन विश्वभर में एक गाँठ का शिकार है – नवजनवादी क्रान्ति की गाँठ। जब तक सभी क्रान्तिकारी सम्भावना वाले देशों के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी नवजनवादी क्रान्ति की गाँठ को काटते नहीं तब तक मज़दूर आन्दोलन और कम्युनिस्ट आन्दोलन एक गम्भीर संकट का शिकार रहेगा और अपने लाख संकट के बावजूद साम्राज्यवाद युद्धों को पैदा कर-करके अपने अस्तित्व को खींचता जायेगा।

आख़िरी दिन के पहले सत्र की अध्यक्षता जी.पी. मिश्र और मीनाक्षी ने की। दूसरे सत्र में अध्यक्षता की ज़िम्मेदारी बादाम मज़दूर यूनियन के आशीष और बिगुल मज़दूर दस्ता के राजविन्दर ने उठायी। इस सत्र में बहस जारी रही। आख़िरी दिन हस्तक्षेप करने वालों में शिवानी, प्रेमप्रकाश, सतयनारायण, आशीष, लखविन्दर, डा. अमरनाथ द्विवेदी, प्रशान्त, नगेन्द्र, आनन्द, जयपुष्प, रवीन्द्र नाथ राय, शिरीष मेंढी, रामाशीष गुप्ता, सुखविन्दर और अभिनव प्रमुख थे। आख़िरी दिन काफ़ी देर तक बहस चलती रही और अन्त में इस बहस को आगे जारी रखने के साथ संगोष्ठी का औपचारिक समापन हुआ। आख़िरी दिन, 'सॉल्ट ऑफ़ दि अर्थ' नामक फ़िल्म का प्रदर्शन देर रात में किया गया।

साथियो!

आपको ज्ञात होगा कि 'नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल' में एक विशेष लेख 'कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है?' किश्तों में प्रकाशित हो रहा था। वह लेख 'मज़दूर बिगुल' में जारी रहेगा। इस अंक में किन्हीं अपरिहार्य कारणों से हम उस लेख की अगली किश्त नहीं दे पा रहे हैं। अगले अंक में उसकी अगली किश्त प्रकाशित की जायेगी। हमें आपको हुई असुविधा के लिए खेद है।

– सम्पादक मण्डल

घोषणापत्र का प्रपत्र : प्रपत्र 4
(नियम 8 के अन्तर्गत)

समाचार पत्र का नाम	मज़दूर बिगुल
पत्र की भाषा	हिन्दी
आवर्तिता	मासिक
पत्र का खुदरा बिक्री मूल्य	तीन रुपये
प्रकाशक का नाम	कात्यायनी
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा,
पेपर	मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ
प्रकाशन का स्थान	निशातगंज, लखनऊ
मुद्रक का नाम	कात्यायनी
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा,
पेपर	मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ
मुद्रणालय का नाम	वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज,
	लखनऊ
सम्पादक का नाम	सुखविन्दर
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा,
पेपर	मिल रोड, निशातगंज लखनऊ
स्वामी का नाम	कात्यायनी
राष्ट्रीयता	भारतीय

मैं कात्यायनी, यह घोषणा करती हूँ कि उपर्युक्त तथ्य मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार सत्य हैं।

हस्ताक्षर
(कात्यायनी)
प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

- डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522 2786782
- जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे)
- जाफ़रा बाज़ार, गोरखपुर-273001
- जनचेतना, दिल्ली - फ़ोन : 09213639072
- जनचेतना, लुधियाना - फोन : 09815587807

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
फ़ोन : 0522-2335237
दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94
ईमेल : bigul@rediffmail.com
मूल्य : एक प्रति – रु. 3/- वार्षिक – रु. 40.00 (डाक ख़र्च सहित)

देश के विभिन्न हिस्सों में माँगपत्रक आन्दोलन–2011 की शुरुआत

अब चलो नयी शुरुआत करो! मज़दूर मुक्ति की बात करो!

बिगुल संवाददाता

सितम्बर 2010 में देश के विभिन्न हिस्सों में मज़दूर कार्यकर्ताओं, विभिन्न मज़दूर यूनियनों, और क्रान्तिकारी जनसंगठनों द्वारा **माँगपत्रक आन्दोलन–2011** की शुरुआत की गयी है। यह एक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन है जिसमें भारत के मज़दूर वर्ग का एक व्यापक माँगपत्रक तैयार करते हुए भारत की सरकार से यह माँग की गयी है कि उसने मज़दूर वर्ग से जो-जो वायदे किये हैं उन्हें पूरा करे, श्रम क़ानूनों को लागू करे, नये श्रम क़ानून बनाये और पुराने पड़ चुके श्रम क़ानूनों को रद्द करे। इस माँगपत्रक में क़रीब 26 श्रेणी की माँगें हैं जो आज के भारत के मज़दूर वर्ग की लगभग सभी प्रमुख आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं और साथ ही उसकी राजनीतिक माँगों को भी अभिव्यक्त करती हैं। इन सभी माँगों के लिए मज़दूर वर्ग में व्यापक जनसमर्थन जुटाने के लिए आन्दोलन चलाने के वास्ते एक संयोजन समिति का निर्माण किया गया है जो आन्दोलन की आम दिशा और कार्यक्रम को तय करेगी।

माँगपत्रक में सबसे प्रमुखता के साथ न्यूनतम मज़दूरी और कार्यदिवस की लम्बाई के प्रश्न को उठाया गया है। यह माँग की गयी है कि नये न्यायपूर्ण पैमानों के आधार पर एक नयी राष्ट्रीय न्यूनतम मज़दूरी तय की जाये और उसे समय-समय पर बढ़ाया जाये। जब तक कि यह नयी न्यूनतम मज़दूरी तय नहीं होती तब तक न्यूनतम मज़दूरी को 11 हज़ार रुपये तय किया जाये जो मज़दूर के लिए बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए लगभग पर्याप्त होगी। इसके अतिरिक्त, यह माँग की गयी है कि भोजनावकाश समेत आठ घण्टे के कार्यदिवस को सख़्ती के साथ लागू किया जाये। इन दोनों क़ानूनों का उल्लंघन करने वाले मालिकान और श्रम विभाग के अधिकारियों पर त्वरित और सख़्त कार्रवाई की जानी चाहिए। इसके लिए माँगपत्रक ने सरकारी श्रम विभाग के पूरे ढाँचे में परिवर्तन की माँग रखते हुए उसके जनवादीकरण की माँग को उठाया है। श्रम न्यायालयों की पूरी संरचना में भी माँगपत्रक महत्त्वपूर्ण बदलावों की माँग करते हुए जनवादीकरण करने की माँग करता है।

माँगपत्रक–2011 ठेका मज़दूरों और पीस रेट मज़दूरों समेत समस्त अनौपचारिक मज़दूरों की माँगों को विशेष रूप से केन्द्र में रखता है। सरकार ने 1971 के ठेका मज़दूर क़ानून को बनाते समय यह वायदा किया था कि इस क़ानून का लक्ष्य ठेका मज़दूरी का उन्मूलन करना है, लेकिन वास्तव में इस क़ानून को ताक पर रखकर लगातार सरकार ने अपने वायदे का उल्लंघन किया है और अपने ही विभागों में ठेकाकरण किया है और निजी पूँजीपतियों को ठेका मज़दूरी का जमकर शोषण करने की छूट दे दी है। इसलिए सबसे पहले तो माँगपत्रक आन्दोलन ने यह माँग की है कि सरकार ठेका मज़दूरी क़ानून के सभी प्रावधानों को सख़्ती से लागू करे और उसमें काम के घण्टे नौ घण्टे से घटाकर आठ घण्टे करे। पीस रेट पर काम करने वाले मज़दूरों के लिए माँगपत्रक में यह माँग रखी गयी है कि अलग-अलग पेशों में पीस रेट को कार्यदिवस की लम्बाई और उस पेशे/उद्योग की औसत उत्पादकता के अनुसार ऐसे निर्धारित किया जाये कि वह न्यूनतम मज़दूरी के बराबर हो जाये। माँगपत्रक हर प्रकार के अस्थायी मज़दूरों और ठेका मज़दूरों को स्थायी करने की माँग करता है।

इसके अतिरिक्त, माँगपत्रक–2011 में स्त्री मज़दूरों, प्रवासी मज़दूरों की प्रातिनिधिक माँगें शामिल हैं। काम करने की स्थितियों और दुर्घटना के उचित मुआवज़े की माँगों को भी इस दस्तावेज़ में प्रमुखता के साथ रखा गया है। इसके अलावा यह माँगपत्रक ग्रामीण मज़दूरों, घरेलू मज़दूरों, स्वतन्त्र दिहाड़ी मज़दूरों की माँगों को भी सरकार के सामने स्पष्ट तौर पर रखता है। बाल मज़दूरी और जबरिया मज़दूरी के हर रूप को ख़त्म करने को माँगपत्रक ने विशेष महत्त्व दिया है। रोज़गार गारण्टी, सामाजिक सुरक्षा, खाद्यान्न सुरक्षा, चिकित्सा और शिक्षा की सुविधाओं को माँगपत्रक मज़दूर वर्ग की बुनियादी आवश्यकता मानता है।

माँगपत्रक–2011 विशेष आर्थिक क्षेत्र क़ानून को रद्द करने की माँग करता है। जब तक इसे रद्द करने का काम पूरा नहीं होता तब तक इस बात का प्रावधान किया जाना चाहिए कि वहाँ श्रम क़ानूनों को लागू किया जाये और एस.ई.ज़ेड. को दी जा रही सुविधाओं और रियायतों का ख़र्च सरकार जनता से नहीं बल्कि विशेष करों और शुल्कों के रूप में पूँजीपतियों से वसूल करे।

माँगपत्रक मज़दूरों के संगठित होने के अधिकार और यूनियन बनाने की पूरी प्रक्रिया को पारदर्शी और जनवादी बनाने के अधिकार को महत्त्वपूर्ण राजनीतिक अधिकार मानता है। साथ ही, पर्यावरण सुरक्षा के मानकों को तय करना और उन्हें लागू करना भी माँगपत्रक–2011 मज़दूर वर्ग की माँग मानता है क्योंकि पर्यावरण की तबाही का नुक़सान सबसे पहले मज़दूर वर्ग को ही उठाना पड़ता है।

अन्य तमाम अहम माँगों के अतिरिक्त माँगपत्रक–2011 नयी संविधान सभा बुलाने की माँग करता है क्योंकि मौजूदा संविधान को बनाने वाली संविधान सभा को सार्विक मताधिकार के आधार पर नहीं चुना गया था, बल्कि इसे देश के 11.5 प्रतिशत सम्पत्तिधारी और राजे-रजवाड़ों के प्रतिनिधियों ने बनाया था। इसके अतिरिक्त, औपनिवेशिक काल में बने आई.पी.सी., सी.आर.पी.सी., जेल मैनुअल और पुलिस मैनुअल को भी बदलने की माँग की गयी है। ये मज़दूर वर्ग की महत्त्वपूर्ण राजनीतिक माँगें हैं।

कुल मिलाकर माँगपत्रक–2011 मज़दूर वर्ग की उन सभी माँगों को देश की पूँजीवादी सरकार के सामने रखता है जो उसकी क़ानूनी और संवैधानिक माँगें हैं। यह माँगपत्रक–2011 देश के शासक वर्गों और उनकी सरकार से यह माँग करता है कि वह अपने सभी वायदों को पूरा करे, जो उसने देश के मेहनतकशों से किये हैं और अगर वे ऐसा नहीं कर सकते तो उन्हें जनप्रतिनिधि कहलाने का और सरकार चलाने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। अगर सरकार देश की 80 फ़ीसदी जनता से किये गये वायदे ही नहीं निभा सकती है तो वह किस जनता का प्रतिनिधित्व कर रही है? अगर सरकार ये माँगें नहीं मानतीं तो यह पूँजीवादी व्यवस्था देशभर की मेहनतकश जनता के सामने और अच्छी तरह से बेनक़ाब हो जायेगी। **निश्चित रूप से, मज़दूर वर्ग की मुक्ति की लड़ाई इस माँगपत्रक आन्दोलन से पूरी नहीं हो जाती। वास्तव में यह इससे शुरू होती है।** यह आन्दोलन पूरी व्यवस्था और सत्ता के चरित्र को मज़दूर वर्ग के समक्ष और अधिक साफ़ करेगा। साथ ही, यह आन्दोलन मज़दूर वर्ग की कई जायज़ माँगों को जीतने और फ़ौरी राहत हासिल करने का काम भी कर सकता है। यह एक नयी शुरुआत है जो देश के मज़दूरों को राजनीतिक रूप से संगठित करने के उद्देश्य से की जा रही है।

फ़िलहाल, इस आन्दोलन की शुरुआत दिल्ली, पंजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, महाराष्ट्र और छत्तीसगढ़ के विभिन्न हिस्सों में की गयी है। सबसे पहले इस माँगपत्रक को लेकर कार्यकर्ता मज़दूरों के कारख़ाना इलाक़ों और रिहायशी इलाक़ों में जा रहे हैं और उन्हें इसके बारे में समझा और बता रहे हैं। साथ ही, इस माँगपत्रक के समर्थन में मज़दूरों के हस्ताक्षर जुटाये जा रहे हैं। यह रिपोर्ट लिखे जाने तक हज़ारों हस्ताक्षर जुटाये जा चुके थे। मज़दूरों को गोलबन्द और संगठित करने के लिए उनके रिहायशी इलाक़ों में उनकी गोलबन्दी कमेटियाँ बनायी जा रही हैं। इसके बाद मज़दूरों की व्यापक सभाएँ और पंचायतें बुलाने की योजना है जिनके ज़रिये मज़दूर वर्ग को इस माँगपत्रक आन्दोलन में गोलबन्द और संगठित किया जायेगा। इस आन्दोलन के पहले चरण का समापन 2011 के मई दिवस को देश की संसद पर मज़दूरों के विशाल जुटान और लाखों हस्ताक्षर संसद को सौंपने के साथ होगा। आने वाला मई दिवस 125वाँ मई दिवस है। इस दिन देश के विभिन्न हिस्सों से हज़ारों मज़दूरों को जुटाया जायेगा और इस देश के तथाकथित प्रतिनिधि निकाय, यानी संसद, के दरवाज़े पर दस्तक दी जायेगी और तथाकथित जनप्रतिनिधियों से यह माँग की जायेगी कि अगर वे सही मायनों में जनप्रतिनिधि हैं तो मज़दूर वर्ग की इन जायज़ माँगों को पूरा करें। अन्यथा, गद्दी छोड़ दें। लेकिन इस प्रदर्शन के साथ ही यह आन्दोलन ख़त्म नहीं होगा। अगले चरण में लाखों की बजाय देशभर से करोड़ों मज़दूरों के हस्ताक्षरों के साथ लाखों मज़दूरों को देश की राजधानी में लाने की योजना है। पहले चरण की तैयारी शुरू हो चुकी है।

आने वाले महीनों में यह माँगपत्रक आन्दोलन देश के विभिन्न हिस्सों में जायेगा और मज़दूर वर्ग का समर्थन जुटायेगा। माँगपत्रक आन्दोलन–2011 की संयोजन समिति ने देशभर के मज़दूरों और संवेदनशील नागरिकों से अपील की है कि वे भी माँगपत्रक मँगायें और उसके पक्ष में अधिक से अधिक हस्ताक्षर जुटाकर भेजें।

कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में 100 से भी अधिक ...

(पेज 8 से आगे)

खुलेआम तथा पुलिस-प्रशासन अधिकारियों से बातचीत में कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व पर "माओवादी" आतंकवादी होने का दोष लगाकर दमन के लिए उकसाते रहे। उनके ऐसा करने के पीछे मज़दूरों को डराने का मकसद भी था। दमन की इस तरह की साज़िशों को नाकाम करने का रामबाण मज़दूरों की विशाल फौलादी एकजुटता, अनुशासन, संगठित ताक़त ही हो सकती है।

लुधियाना के मज़दूरों के लिए एक नयी राह

कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में लड़े गये पावरलूम मज़दूरों के संघर्ष के मिसालपूर्ण जुझारूपन और शानदार जीत की बात करते वक्त हम यह क़तई नहीं कहते कि लुधियाना में इससे पहले हुए संघर्षों में मज़दूरों ने जुझारूपन और साहस की कमी दिखायी या उन्होंने कभी कुछ हासिल किया ही नहीं। लुधियाना में समय-समय पर उठ खड़े होने वाले संघर्षों में मज़दूरों ने जिस ज़ोशो-खरोश, जुझारूपन, और दृढ़ता का परिचय दिया, हम उसके दिल की गहराइयों से क़ायल हैं। लेकिन इन संघर्षों में आमतौर पर ऐसी दो गम्भीर खामियाँ हमेशा से मौजूद रही हैं जिन्होंने लुधियाना के मज़दूर आन्दोलन को बेहद नुक़सान पहुँचाया है। पहली कमी जो आमतौर पर दिखायी पड़ती है, वह यह है कि लुधियाना के मज़दूर स्वत:स्फूर्त ढंग से, बिना किसी योजना-तैयारी के या बिना किसी नेतृत्व के अक्सर मैदान में कूद पड़ते हैं। इस तरह के आन्दोलन कुछ अपवादों को छोड़कर आमतौर पर नुक़सान ही उठाते हैं। ढण्डारी काण्ड के समय 3-4 दिसम्बर 2009 को मज़दूरों का सड़कों पर उतर आना बेशक उनके जुझारूपन और साहस का परिचय देता है, लेकिन उस आन्दोलन का न कोई नेतृत्व था, न कोई योजना, न कोई स्पष्ट राह। इसलिए भारी नुक़सान हुआ। दूसरी बात यह कि पहले के संघर्षों में मज़दूरों ने आमतौर पर दलाल, बेईमान और समझौतापरस्त नेताओं व यूनियनों से धोखा खाया है। इन दलालों के चक्करों में फँसकर अपने सारे जुझारूपन, बहादुरी, दृढ़ता और क़ुर्बानी की भावना के बावजूद संघर्षों में मज़दूरों ने जो नुक़सान उठाया है, उसे आँका नहीं जा सकता। इन दलालों के चंगुल से छुटकारा पाना लुधियाना के मज़दूरों के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। शक्तिनगर, कश्मीर नगर, माधोपुर, गौशाला के पावरलूम मज़दूरों का यह संघर्ष शानदार जीत हासिल करने तक इसीलिए दृढ़ता से जारी रहा, क्योंकि यह संघर्ष उपरोक्त दोनों खामियों से मुक्त था। दलालों, समझौतापरस्तों, क़ायरों के विपरीत मज़दूरों को इस संघर्ष में ईमानदार, दृढ़, साहसी, समझदार नेतृत्व हासिल था।

निचोड़ के तौर पर तीन मुख्य बातों ने मिलकर इस बार मज़दूरों के संघर्ष को जीत हासिल करवायी। पहली मुख्य बात, मज़दूरों का जुझारूपन, साहस और क़ुर्बानी की भावना और उनके द्वारा दिखायी गयी समझदारी थी। दूसरी थी, उनका संगठित होना और संघर्ष का योजनाबद्ध होना। तीसरी बात थी, उनके संगठन का ईमानदार, साहसी, दृढ़ और समझदार नेतृत्व। आगे भी मज़दूरों को स्वत:स्फूर्तता को सचेतना और योजनाबद्धता में तब्दील करके सफलता के नये मुक़ाम हासिल करने हैं।

● **लखविन्दर**

काम के दिन की उचित लम्बाई और उसके लिए उचित मज़दूरी मज़दूर वर्ग की न्यायसंगत और प्रमुख माँग है!

(पेज 4 से आगे)

माँगपत्रक आन्दोलन–2011 पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे के भीतर मज़दूर वर्ग के जायज़ क़ानूनी अधिकारों को हासिल करने की लड़ाई है। लेकिन इस संघर्ष की प्रक्रिया में हम पूँजीवादी व्यवस्था की सच्चाई को भी समस्त सर्वहारा वर्ग के समक्ष उजागर करते जायेंगे और यह प्रत्यक्ष होता जायेगा कि यह कैसी और किसकी व्यवस्था है? इसे कौन लोग चलाते हैं और यह किसके हितों की सेवा करती है?

इस लड़ाई को लड़ते हुए हम जो भी हासिल कर सकेंगे, उसे हासिल करेंगे। लेकिन हम इस लड़ाई को लड़ते हुए भी यह कभी नहीं भूल सकते कि सर्वहारा वर्ग का ऐतिहासिक लक्ष्य क्या है और सर्वहारा वर्ग की मुक्ति 'उचित काम कि उचित मज़दूरी' से नहीं होगी, बल्कि एक ऐसी व्यवस्था में होगी जिसमें उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढाँचे पर उत्पादन करने वाले वर्गों का हक़ होगा और फ़ैसला लेने की ताक़त उनके हाथों में होगी।

माँगपत्रक आन्दोलन–2011 शिक्षा माला : माँगपत्रक आन्दोलन–2011 के मुद्दों एवं माँगों के बारे में चर्चा

काम के दिन की उचित लम्बाई और उसके लिए उचित मज़दूरी मज़दूर वर्ग की न्यायसंगत और प्रमुख माँग है!

दुनियाभर के मज़दूर आन्दोलन में काम के दिन की उचित लम्बाई और उसके लिए उचित मज़दूरी का भुगतान एक प्रमुख मुद्दा रहा है। 1886 में हुआ शिकागो का महान मज़दूर आन्दोलन इसी मुद्दे को केन्द्र में रखकर हुआ था। मई दिवस शिकागो के मज़दूरों के इसी आन्दोलन की याद में मनाया जाता है। 1886 की पहली मई को शिकागो की सड़कों पर लाखों की संख्या में उतरकर मज़दूरों ने यह माँग की थी कि वे इंसानों जैसे जीवन के हक़दार हैं। वे कारख़ानों और वर्कशॉपों में जानवरों की तरह 14 से 16 घण्टे और कई बार तो 18 घण्टे तक खटने को अस्वीकार करते हैं। उन्होंने 'आठ घण्टे काम, आठ घण्टे आराम और आठ घण्टे मनोरंजन' का नारा दिया। कालान्तर में दुनियाभर के पूँजीपति वर्गों को मज़दूर वर्ग के आन्दोलन ने इस बात के लिए मजबूर किया कि वे कम-से-कम क़ानूनी और काग़ज़ी तौर पर मज़दूर वर्ग को आठ घण्टे के कार्यदिवस का अधिकार दें। यह एक दीगर बात है कि आज कई ऐसे क़ानून बन गये हैं जो मज़दूर वर्ग के संघर्षों द्वारा अर्जित इस अधिकार में चोर दरवाज़े से हेर-फेर करते हैं और यह कि दुनियाभर में इस क़ानून को अधिकांशत: लागू ही नहीं किया जाता। आमतौर पर मज़दूर 12–14 घण्टे खटने के बाद न्यूनतम मज़दूरी तक नहीं पाते।

न्यूनतम मज़दूरी की माँग भी मज़दूर वर्ग की पुरानी माँग है जिसे मज़दूर वर्ग लगभग एक सदी से उठा रहा है। मज़दूर वर्ग ने दुनियाभर में अपने-अपने देश के पूँजीपति वर्ग को अपने संघर्षों के दम पर बाध्य किया कि वे और उनकी सरकारें ऐसे क़ानून बनायें जो मज़दूरों के लिए एक न्यूनतम मज़दूरी को तय करें। न्यूनतम मज़दूरी को इस आधार पर तय किया गया कि मज़दूर काम करने की अपनी क्षमता, परिवार के सदस्यों के जीवन का पुनरुत्पादन कर सके और जीवन की सबसे बुनियादी सुविधाएँ प्राप्त कर सके। लेकिन यहाँ भी वही कहानी दोहरायी गयी। काग़ज़ पर तो न्यूनतम मज़दूरी तय कर दी गयी, लेकिन समय बीतने के साथ इस काग़ज़ी क़ानून का काग़ज़ीपन सामने आने लगा। आज हालत यह है कि दुनियाभर में इस क़ानून का धड़ल्ले से उल्लंघन होता है। आज के पूँजीवादी समाज में बेरोज़गारी, ग़रीबी और भुखमरी-कुपोषण का मारा मज़दूर न्यूनतम मज़दूरी से भी कम दर पर और आठ घण्टे से कहीं ज़्यादा काम करने को मजबूर होता है। और यह सारी नंगई भरी लूट मालिक और ठेकेदार सरकारी एजेंसियों की नाक के नीचे और घूस खिलाकर उन्हें अपने साथ लेकर करते हैं। हर आम मज़दूर जानता है कि किसी भी औद्योगिक विवाद के निपटारे में सरकारी श्रम विभाग मज़दूरों के हित की रक्षा करने और श्रम क़ानूनों को लागू करवाने की बजाय मालिकों और ठेकेदारों के एजेण्ट के रूप में काम करता है।

माँगपत्रक आन्दोलन–2011 'उचित काम की उचित मज़दूरी' के लिए संघर्ष का आह्वान करता है! ऐसे में 'भारत के मज़दूरों का माँगपत्रक–2011' कार्यदिवस की उचित लम्बाई और काम की उचित मज़दूरी को लेकर कई माँगें रखता है। यह एक दीर्घकालिक और महत्त्वपूर्ण आन्दोलन है जो आने वाले समय में मज़दूर आन्दोलन को एक नयी दिशा देने की सम्भावना रखता है। इसलिए सभी मज़दूर भाइयों और बहनों के लिए यह समझना अहम है कि माँगपत्रक आन्दोलन–2011 इन माँगों को किस प्रकार उठा रहा है। माँगपत्रक आन्दोलन–2011 ने काम के घण्टे और उचित न्यूनतम मज़दूरी के सवाल पर निम्न माँगें भारत सरकार के सामने रखी है।

सरकार सभी प्रकार के मज़दूरों और सभी सेक्टरों के लिए भोजनावकाश समेत आठ घण्टे के कार्यदिवस के क़ानून को सख़्ती से लागू करे। जिन क़ानूनों में यह कार्यदिवस भोजनावकाश समेत नौ घण्टे का रखा गया है उन्हें संशोधित करे, जैसे कि ठेका मज़दूर क़ानून, 1971। सभी प्रकार के मज़दूरों को एक साप्ताहिक अवकाश मिलना चाहिए, चाहे वे स्थायी हों, अस्थायी हों, ठेके पर हों या दिहाड़ी पर हों। आठ घण्टे के कार्यदिवस और एक साप्ताहिक अवकाश के नियम को सरकार सभी निजी व सार्वजनिक उपक्रमों पर सख़्ती से लागू करे और इसका उल्लंघन करने वाले मालिक या ठेकेदार और श्रम विभाग के ज़िम्मेदार अफ़सर पर भी त्वरित और सख़्त कार्रवाई करे। किसी भी मज़दूर से कोई नियोक्ता जबरिया ओवरटाइम नहीं करा सकता है। मज़दूर स्वेच्छा से ओवरटाइम करे तो ही उससे ओवरटाइम कराया जाना चाहिए और ओवरटाइम के लिए उसे दोगुनी दर से भुगतान किया जाना चाहिए। इस क़ानून को न लागू करने वाले नियोक्ता पर भी सख़्त कार्रवाई को सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

इसके साथ ही माँगपत्रक आन्दोलन यह माँग करता है कि आज की बढ़ी हुई उत्पादकता के मद्देनज़र छह घण्टे के कार्यदिवस और दो साप्ताहिक अवकाश का क़ानून बनाया जाये। जब आठ घण्टे के कार्यदिवस का क़ानून बना था, तब से श्रम की उत्पादकता, यानी पैदा करने की रफ़्तार काफ़ी बढ़ चुकी है और उसके अनुसार कार्यदिवस की लम्बाई को छोटा किया जाना चाहिए।

जहाँ तक उचित न्यूनतम मज़दूरी का सवाल है तो माँगपत्रक आन्दोलन–2011 माँग करता है कि मज़दूरों की न्यूनतम मज़दूरी को नये सिरे से निर्धारित किया जाये। इसका आधार महज़ 2400 या 2100 कैलोरी खाद्यान्न के उपभोग को नहीं बनाया जाना चाहिए, बल्कि जीने के लिए आवश्यक कई पैमानों को बनाया जाना चाहिए। जैसे कि न्यूनतम मज़दूरी के निर्धारण में मज़दूर वर्ग के कपड़े, ईंधन, मकान का किराया, बिजली, शिक्षा और इलाज, शादी-ब्याह, उत्सवों-त्योहारों के ख़र्चों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। साथ ही, सरकार राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन 1957 द्वारा की गयी सिफ़ारिशों को भी लागू करे। इस सम्मेलन ने कहा था कि पोषणयुक्त आहार के लिए मज़दूरों को प्रतिदिन 2700 कैलोरी खाद्यान्न मिलना चाहिए। इसलिए न्यूनतम मज़दूरी में खाद्यान्न आवश्यकता को बढ़ाकर 2400/2100 से 2700 पर किया जाये और उसे गाँव और शहर के लिए अलग नहीं बल्कि एक बराबर रखा जाये। साथ ही, माँगपत्रक आन्दोलन माँग करता है कि जब तक नयी न्यूनतम मज़दूरी तय नहीं होती तब तक देशभर में एक समान न्यूनतम मज़दूरी को लागू किया जाये और इसे 11,000 रुपये प्रति माह पर तय किया जाये। इस न्यूनतम मज़दूरी को सभी प्रकार के उपक्रमों, औद्योगिक, व्यावसायिक, कृषि और सेवा, में एक समान रूप से लागू करने के लिए क़ानून बनाया जाना चाहिए और संवैधानिक संशोधन किया जाना चाहिए। साथ ही, न्यूनतम मज़दूरी में जीवन-निर्वाह के बढ़ते ख़र्च के अनुसार नियमित तौर पर बढ़ोत्तरी की जानी चाहिए। इसके लिए उसे जीवन-निर्वाह सूचकांक से जोड़ दिया जाना चाहिए। न्यूनतम मज़दूरी के क़ानून को संविधान की नवीं सूची में लाया जाना चाहिए ताकि औद्योगिक विवाद की सूरत में मालिक उस पर स्टे न ले सके। आम तौर पर मज़दूरों की मज़दूरी को इसी तरह से मारा जाता है। न्यूनतम मज़दूरी का क़ानून कहीं भी लागू नहीं होता और इसे लागू करने को सुनिश्चित करने के लिए देशभर के श्रम विभागों में एक अलग सेल (प्रकोष्ठ) बनाया जाये और विशेष अधिकारी नियुक्त किये जायें। किसी भी प्रकार के जुर्माने के रूप में आमतौर पर मालिक/ठेकेदार मज़दूर की मज़दूरी मार लेते हैं। ऐसा क़ानून बनाया जाना चाहिए जो न्यूनतम मज़दूरी को किसी भी प्रकार के क़ानूनी विवाद से सम्बद्ध न करे। और अन्त में माँगपत्रक आन्दोलन–2011, अन्य माँगों के अतिरिक्त यह माँग रखता है कि पीस रेट पर काम करने वाले मज़दूरों के पीस रेट को उनके पेशे/उद्योग की औसत कुशलता/उत्पादकता और कार्यदिवस की लम्बाई के आधार पर ऐसे तय किया जाना चाहिए कि वह न्यूनतम मज़दूरी के बराबर हो जाये।

●

उपरोक्त तरीक़े से माँगपत्रक आन्दोलन–2011 सरकार से यह माँग करता है कि 'उचित काम की उचित मज़दूरी' का क़ानूनी हक़ वह मज़दूरों के लिए सुनिश्चित करे और इसकी ज़िम्मेदारी ले। अगर वह ऐसा नहीं करती है तो उसे अपने बनाये सारे क़ानूनों को रद्दी की टोकरी में फेंक देना चाहिए। अगर वह मज़दूर वर्ग की इन जायज़ क़ानूनी माँगों को नहीं मानती है तो उसे अपने आपको जनप्रतिनिधि कहना छोड़ देना चाहिए। हम वही माँग रहे हैं जो हमें क़ानून देता है या जिसे देने का वायदा सरकार और उसकी एजेंसियों ने किया है। इससे ज़्यादा हम कुछ भी नहीं माँग रहे हैं। हम सिर्फ़ उसी तर्क के आधार पर अपनी माँगें रख रहे हैं जिस तर्क के आधार पर पूँजीपति वर्ग मज़दूरी तय करता आया है। मज़दूरों को इतनी मज़दूरी मिलनी चाहिए और उसका कार्यदिवस इतना होना चाहिए कि वह स्वस्थ रहते हुए काम करना जारी रख सके और अपनी नस्ल का पुनरुत्पादन कर सके। लेकिन आज तो पूँजीवाद मज़दूरों को इतना भी नहीं दे रहा है और उन्हें कुपोषण, बीमारी और मौत के गड्ढे में धकेलता जा रहा है। ऐसे में माँगपत्रक आन्दोलन–2011 शासक वर्गों को उनके द्वारा मज़दूरों के किये गये वायदों की याद दिलाते हुए यह माँग कर रहा है कि श्रम क़ानूनों को सख़्ती से लागू किया जाये; अपर्याप्त श्रम क़ानूनों में संशोधन किया जाये, जिसकी सिफ़ारिश सरकारी आयोगों ने ही की है; और पुराने पड़ चुके या अप्रासंगिक हो चुके श्रम क़ानूनों को रद्द कर नये उचित और प्रासंगिक श्रम क़ानून बनाये जायें।

लेकिन हमारी मुक्ति महज़ पूँजीवादी 'उचित काम की उचित मज़दूरी' से नहीं होगी! अपनी मुक्ति के लिए हम ज़्यादा नहीं, बस सारी दुनिया माँगते हैं!

माँगपत्रक आन्दोलन–2011 मज़दूरों को अपने क़ानूनी हक़ों से अवगत कराता है। लेकिन हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि यह इसी व्यवस्था के दायरे में शासक वर्गों से अपने वायदों को पूरा करवाने की लड़ाई है। पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर मज़दूर वर्ग के लिए जो उचित काम के घण्टे और उसके लिए उचित मज़दूरी है, वह वास्तव में इस व्यवस्था के उत्पादन सम्बन्धों और नियम-क़ानूनों के अनुसार उचित है। वह पूँजीपति वर्ग की निगाह में उचित है। मज़दूर की मेहनत करने की ताक़त भी पूँजीपति वर्ग के लिए बेचा-ख़रीदा जाने वाला एक माल है। इसलिए उसके लिए उचित मज़दूरी का अर्थ है इस माल के उत्पादन में लगने वाली लागत! यानी कि पूँजीपति वर्ग के लिए उचित मज़दूरी का अर्थ है मज़दूर को इतना दे देना कि वह जीवित रह सके और हर दिन आकर उसके लिए बेशी पैदावार कर सके। यानी उसके कारख़ाने में खट सके और अपने आपको काम करने की हालत में बनाये रख सके और अपनी नस्ल को ज़िन्दा रख सके।

मज़दूर पूँजीवादी समाज में अपने दिनभर काम करने की ताक़त को पूँजीपति को बेच देता है और बदले में उसे पूँजीपति जीने की खुराक दे देता है। पूँजीवादी अर्थशास्त्र कहता है कि मज़दूरी और कार्यदिवस की लम्बाई बाज़ार की प्रतियोगिता से तय होते हैं। बाज़ार में पूँजीपतियों के बीच की प्रतिस्पर्द्धा और रोज़गार के सीमित अवसरों के लिए प्रतिस्पर्द्धा श्रमशक्ति के मोल को कई बार उस न्यूनतम स्तर से भी नीचे लेती जाती है जो मज़दूर को ज़िन्दा और काम करने योग्य बनाये रख सके। यही कारण है कि न्यूनतम मज़दूरी के क़ानून को पूँजीपति कहीं भी लागू नहीं कर पाते। पूँजीपति के पास पैसे की ताक़त होती है और इसलिए मज़दूर से मोलभाव में वह हावी होता है। अगर मज़दूर किसी निश्चित मज़दूरी पर काम करने के लिए राज़ी नहीं है तो पूँजीपति तो अपने पैसे के बल पर कुछ समय तक काम चला लेता है लेकिन मज़दूर नहीं चला पाता क्योंकि उसके पास जीने के लिए अपनी श्रमशक्ति को बेचने के अलावा और कोई रास्ता नहीं होता। इसलिए इस प्रतियोगिता में हमेशा पूँजीपति जीतता है और मज़दूर हारता है। इसलिए मज़दूर अन्तत: जहाँ और जिन शर्तों पर काम पाता है, उसे करने के लिए मजबूर होता है। मज़दूरों की ताक़त बेरोज़गारी की बढ़ती रिज़र्व आर्मी के साथ और कम होती जाती है। पूँजीपति वर्ग के सामने मोलभाव की उसकी ताक़त लगातार कम होती रहती है। पूँजीवादी अर्थशास्त्र के लिए यह एक न्यायपूर्ण प्रतियोगिता होती है। लेकिन स्पष्ट है कि यह कोई न्यायपूर्ण प्रतियोगिता नहीं है। इसमें मज़दूर निर्भर है और पूँजीपति हावी।

वास्तव में जो मज़दूरी पूँजीपति मज़दूर को देता है वह श्रम की पैदावार का ही एक हिस्सा होता है। समस्त सम्पदा का स्रोत प्रकृति और श्रम होता है। कोई भी उत्पादन पूँजी द्वारा अपने आप नहीं होता। वास्तव में पूँजी स्वयं भौतिक उत्पादन का एक रूप है, यानी मुद्रा रूप। समस्त उत्पादन मज़दूर अपने श्रम से करता है। इसलिए पूँजी और कुछ नहीं बल्कि भण्डारित श्रम है। इस प्रकार मज़दूरों को उन्हीं की उपज से मज़दूरी दी जाती है, जो वास्तव में उन्हें महज़ ज़िन्दा रखने के लिए पर्याप्त होती है। बाक़ी सारी उपज को पूँजीपति हड़प जाता है और यही उसकी अमीरी का कारण होता है। क़ायदे से तो श्रम की समस्त उपज समस्त श्रमिकों की सामूहिक सम्पत्ति होनी चाहिए। **इसलिए वास्तव में अगर पूँजीपति वर्ग अपनी 'उचित मज़दूरी' मज़दूर को देता भी हो (जो 10 में से 9 मामलों में वह नहीं देता) तो भी वह न्यायपूर्ण नहीं है।** पूँजीवादी उचित मज़दूरी का अर्थ महज़ इतना होता है कि मज़दूर को पेट भरने के साधन नसीब हो जायें ताकि वह पूँजीपति के मुनाफ़े के लिए काम करने की हालत में अपने को बनाये रख सके।

इसलिए जब हम पूँजीपति से 'उचित न्यूनतम मज़दूरी' देने की माँग कर रहे हैं तो यह हम कोई बहुत बड़ी क्रान्तिकारी माँग नहीं कर रहे हैं। हम सिर्फ़ पूँजीपति वर्ग से उसके वायदों को पूरा करने की माँग कर रहे हैं। यह माँग अगर पूरी हो भी जाये तो मज़दूर वर्ग केवल जीने की खुराक को नियमित और व्यवस्थित तरीक़े से पाने लग जायेगा। यह अपने आप में न्यायपूर्ण नहीं होगा। न्यायपूर्ण केवल एक ही चीज़ हो सकती है – **जो समस्त भौतिक सम्पदा का उत्पादन कर रहे हैं, उन्हीं का उस उत्पादन पर क़ब्ज़ा होना चाहिए और उन्हीं को उसके वितरण का अधिकार होना चाहिए; उत्पादक वर्गों के पास ही क़ानून बनाने, उसे लागू करने और शासन चलाने का अधिकार होना चाहिए। यही एकमात्र सच्ची न्यायपूर्ण व्यवस्था हो सकती है।**

(पेज 3 पर जारी)

काम के उचित दिन की उचित मज़दूरी

● फ़्रेडरिक एंगेल्स

(एंगेल्स ने यह लेख 'दि लेबर स्टैण्डर्ड' के लिए मई 1-2, 1881 को लिखा था जो उसी वर्ष 7 मई को प्रकाशित हुआ था। इस लेख में एंगेल्स ने बताया है कि मज़दूर वर्ग का ऐतिहासिक लक्ष्य सिर्फ़ पूँजीपति वर्ग द्वारा तय तथाकथित उचित मज़दूरी को प्राप्त करना नहीं है। वास्तव में यह "उचित मज़दूरी" उचित है ही नहीं। मज़दूर वर्ग का अन्तिम लक्ष्य अपने श्रम के उत्पादों पर पूर्ण नियन्त्रण है। यह एक अलग बात है कि जब पूँजीपति वर्ग अपने द्वारा तय तथाकथित उचित मज़दूरी देने से भी मुकर जाता है तो मज़दूर आन्दोलन को उसके लिए भी लड़ना होता है। लेकिन इसका अर्थ यह क़तई नहीं होना चाहिए कि मज़दूर वर्ग का आन्दोलन इसे ही अन्तिम लड़ाई समझे। – सम्पादक)

पिछले पचास वर्षों से यह नारा अंग्रेज़ मज़दूर वर्ग के आन्दोलन का आदर्श वाक्य बना हुआ है। इसने 1824 के कुख्यात कॉम्बिनेशन क़ानूनों के ख़त्म होने के बाद ट्रेडयूनियनों के पैदा होने के दौरान भी अच्छा काम किया। इसने गौरवशाली चार्टिस्ट आन्दोलन के दौरान भी बेहतरीन काम किया जब अंग्रेज़ मज़दूर यूरोपीय मज़दूर वर्ग के आगे चल रहे थे। लेकिन समय गुज़र रहा है, और बहुत-सी अच्छी चीज़ें जो कि पचाल साल, यहाँ तक कि तीस साल पहले तक वांछनीय और आवश्यक थीं, अब पुरानी और पूरी तरह से अप्रासंगिक हो चली हैं। क्या यह पुराना, सम्मानित नारा भी अब ऐसी चीज़ों की ही श्रेणी में शामिल हो चुका है?

काम के उचित दिन के लिए उचित मज़दूरी? लेकिन काम का उचित दिन और उसकी उचित मज़दूरी क्या है? ये किस प्रकार उन नियमों से निर्धारित होते हैं जिसके तहत आधुनिक समाज मौजूद है और विकसित हो रहा है? इसके जवाब लिए हमें किसी नैतिकता या क़ानून और समानता, या मानवता, न्याय या धर्मार्थ कार्यों के किसी विज्ञान की शरण नहीं लेनी चाहिए। नैतिक तौर पर या क़ानून में जो उचित है वह सामाजिक तौर पर जो उचित है उससे काफ़ी दूर हो सकता है। सामाजिक तौर पर उचित होना या अनुचित होना सिर्फ़ एक विज्ञान से तय होता है – वह विज्ञान जो उत्पादन और विनिमय के भौतिक तथ्यों को समझता है, राजनीतिक अर्थशास्त्र का विज्ञान।

अब सवाल यह है कि राजनीतिक अर्थशास्त्र एक काम के उचित दिन की उचित मज़दूरी किसे कहता है? वह बस मज़दूरी की दर और दिनभर के काम की लम्बाई और सघनता को इसका आधार मानता है जो मालिकों की प्रतियोगिता से निर्धारित होते हैं और खुले बाज़ार में लगाये जाते हैं। और जब वे निर्धारित हो जाते हैं, तो वास्तव में वे क्या होते हैं?

सामान्य स्थितियों के तहत, दिन की उचित मज़दूरी वह राशि होती है जो मज़दूर को उसके निवास स्थान और देश के जीवन के स्तर के अनुसार जीविका के आवश्यक साधन मुहैया कराये ताकि वह काम करने और अपनी नस्ल को जारी रखने की स्थिति में बना रह सके। व्यापार के उतार-चढ़ाव के साथ मज़दूरी की वास्तविक दर कभी इस दर के नीचे हो सकती है तो कभी ऊपर; लेकिन उचित स्थितियों में, वह दर सभी उतार-चढ़ावों की औसत होनी चाहिए।

दिन का उचित काम काम के दिन की वह लम्बाई और वास्तविक काम की वह सघनता है जो कामगार के एक दिन की कुल कार्यशक्ति को अगले और आने वाले दिनों में उतना की काम करने की उसकी क्षमता का अतिक्रमण किये बिना ख़र्च करती है।

इस प्रकार इस लेन-देन को इस तरह से समझाया जा सकता है – कामगार पूँजीपति को अपने दिनभर की कार्यशक्ति देता है; यानी, इतनी कार्यशक्ति जो कि इस लेन-देन को लगातार जारी रखने को असम्भव बनाये बिना वह दे सकता है। बदले में उसे ठीक उतना मिलता है जो हर दिन इसी लेन-देन को दोहराते रहने के लिए आवश्यक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने लायक होता है, इससे ज़रा भी ज़्यादा नहीं। कामगार जितना अधिक दे सकता है देता है, पूँजीपति जितना कम दे सकता है देता है, जैसा कि लेन-देन की प्रकृति दिखलाती है। यह उचितपन की बड़ी ख़ास क़िस्म है।

लेकिन आइये मामले को थोड़ा गहराई से देखें। राजनीतिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, चूँकि मज़दूरी और काम के दिन प्रतियोगिता द्वारा निर्धारित होते हैं, इसलिए उचितपन का अर्थ यह प्रतीत होता है कि दोनों पक्षों को बराबरी की शर्तों पर एकसमान उचित शुरुआत मिलती है। लेकिन ऐसा नहीं होता है। पूँजीपति अगर श्रमिक से सहमत नहीं होता है, तो उसके लिए इन्तज़ार करना, और अपनी पूँजी के बूते जीना मुमकिन होता है, लेकिन मज़दूर के लिए नहीं। उसके पास जीने के लिए मज़दूरी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता और इसलिए उसे जब भी, जहाँ भी और जिन भी शर्तों पर काम मिले उसे करना ही होता है। कामगार के पास एक न्यायपूर्ण शुरुआत का कोई मौक़ा नहीं होता। उसके हाथ भूख के हाथों भयंकर तरह से बँधे होते हैं। लेकिन फिर भी, पूँजीपति वर्ग के राजनीतिक अर्थशास्त्र के अनुसार, यही न्यायसंगतता का सच्चा नमूना है।

लेकिन यह एक मामूली बात है। नये उद्योगों में यान्त्रिक शक्ति और यन्त्रों के इस्तेमाल और जिन उद्योगों में यह पहले से मौजूद है वहाँ इसका विस्तार, "अधिक से अधिक हाथों" को काम के बाहर धकेलते रहते हैं; और ये काम वे उस दर से कहीं तेज़ रफ़्तार से करते हैं, जिस दर पर ये बेकार हाथ देश के मैन्युफ़ैक्चर में खप सकते हैं, काम पा सकते हैं। ये "ख़ाली हाथ" पूँजी के उपयोग के लिए एक वास्तविक आरक्षित औद्योगिक फ़ौज खड़ी कर देते हैं। अगर धन्धा बुरा है तो वे भूख से मर सकते हैं, भीख माँग सकते हैं, चोरी कर सकते हैं या कार्यशालाओं (इंग्लैण्ड में 1834 में ग़रीब क़ानून बनाये गये थे जिसके तहत काम करने में सक्षम मज़दूरों की राहत के लिए जेलनुमा कार्यशालाएँ बनायी गयी थीं जिसमें कामगार अनुत्पादक, एकरस और थका देने वाले श्रम में लगाये जाते थे। मज़दूर इन्हें "ग़रीब का जेलख़ाना" कहते थे) में जा सकते हैं; अगर धन्धा अच्छा है तो वे उत्पादन को विस्तारित करने के लिए हमेशा तैयार खड़े होते हैं; और जब तक इस आरक्षित सेना के अन्तिम पुरुष, स्त्री या बच्चे को काम नहीं मिल जाता – जो कि अनियन्त्रित अति-उत्पादन के समय ही होता है – तब तक उनके बीच की प्रतियोगिता मज़दूरी को नीचे रखेगी, और केवल अपनी मौजूदगी भर से श्रम के साथ पूँजी के संघर्ष में पूँजी की ताक़त को बढ़ायेगी। पूँजी के साथ दौड़ में, श्रम न केवल अपंग की स्थिति में होता है, बल्कि उसे अपने पैरों से बँधा तोप का गोला भी खींचना होता है। लेकिन फिर भी यह पूँजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के अनुसार न्यायसंगत है।

लेकिन आइये पता लगायें कि किस मद से पूँजी इस उचित मज़दूरी का भुगतान करती है? ज़ाहिरा तौर पर, पूँजी से। लेकिन पूँजी किसी मूल्य का उत्पादन नहीं करती। धरती के अलावा, श्रम सम्पदा का एकमात्र स्रोत है; पूँजी अपने आप में और कुछ भी नहीं है बल्कि भण्डारित श्रम है। इसलिए श्रम की मज़दूरी श्रम से ही दी जाती है, और कामगार को उसी के उत्पाद से भुगतान किया जाता है। जिसको हम सामान्य न्यायसंगतता कह सकते हैं, उसके अनुसार श्रमिक की मज़दूरी का श्रम के उत्पाद में हिस्सा होना चाहिए। लेकिन राजनीतिक अर्थशास्त्र के अनुसार वह उचित नहीं होगा। इसके विपरीत, कामगार के श्रम का उत्पाद पूँजीपति के पास चला जाता है और कामगार इससे अपनी ज़िन्दगी की बुनियादी ज़रूरतों के अलावा और कुछ नहीं पाता। और इस प्रकार प्रतियोगिता की इस असामान्य रूप से "उचित" दौड़ का अन्त यह होता है कि काम करने वालों के श्रम का उत्पाद निरपवाद रूप से उन लोगों के हाथों मे संचित होता जाता है जो काम नहीं करते हैं, और उनके हाथों में वह उन्हीं मनुष्यों को गुलाम बनाने का सबसे शक्तिशाली हथियार बन जाता है जिन्होंने उसे पैदा किया था।

उचित काम के दिन की उचित मज़दूरी! उचित काम के दिन के बारे में भी काफ़ी कुछ कहा जा सकता है, जिनकी न्यायसंगतता मज़दूरी की न्यायसंगतता के बिल्कुल समान है। लेकिन हमें इसे किसी और मौक़े के लिए छोड़ देना चाहिए। जो कुछ भी कहा गया है उससे बिल्कुल साफ़ है कि यह पुराना नारा अपना जीवन पूरा कर चुका है, और आज के समय में इसमें कम ही दम है। राजनीतिक अर्थशास्त्र की न्यायप्रियता, जिस तरीक़े से वह उन नियमों को स्थापित करती है जो वास्तविक समाज को चलाते हैं, वह सारी न्यायप्रियता एक ही पक्ष में है – पूँजी के पक्ष में। इसलिए, इस पुराने आदर्शवाक्य को हमेशा के लिए दफ़्न रहने दिया जाये और इसकी जगह किसी अन्य आदर्शवाक्य को लेने दी जाये।

अयोध्या फ़ैसला : मज़दूर वर्ग का नज़रिया

(पेज 1 से आगे)

अच्छी तरह से पहचान चुकी है। इसलिए ऐसे किसी भी मुद्दे पर वह ध्रुवीकृत होने नहीं जा रही है। संघ गिरोह के अतिरिक्त, सभी पार्टियाँ इस मुद्दे पर राजनीतिकरण के असम्भाव्यता को अच्छी तरह भाँप चुकी थीं। इसीलिए लगभग सभी चुनावी पूँजीवादी पार्टियों की ओर से कमोबेश एक जैसे बयान आये जो देश की जनता से शान्ति बनाये रखने की अपीलें कर रहे थे। देशभर में सभी धर्मों के गुरू सद्भावना यात्राएँ आदि निकाल रहे थे और ऐसा लग रहा था कि देश धार्मिक सद्भाव और भाईचारे में डूब गया है। इसका कारण सिर्फ़ इतना था कि सारे पूँजीवादी मदारी समझ रहे थे कि इस बार इस मुद्दे का राजनीतिक इस्तेमाल सम्भव नहीं है।

दूसरा कारण – जनता के मूड के अतिरिक्त, यह देश के शासक वर्गों के हित में भी नहीं है। केन्द्र में कांग्रेस नीत संप्रग सरकार किसी भी हालत में मन्दिर मुद्दे को लेकर देश में कोई ध्रुवीकरण नहीं चाहती। इसका कारण कांग्रेस का सेक्युलरवाद नहीं है। वह कितनी सेक्युलर है, यह तो अयोध्या में मन्दिर विवाद का इतिहास ही दिखला देता है! इसका कारण यह है कि अभी चुनावी गणित में कांग्रेस की गोटियाँ अच्छी तरह से सेट हैं। यह सन्तुलन मन्दिर मुद्दे पर शान्ति भंग होने से बिगड़ सकता है, और भाजपा की डूब रही नैया अचानक उबरकर हावी भी हो सकती है। इसलिए कांग्रेस भी हर तरह से इस मुद्दे को गरमाने से बचाने में लगी थी। उत्तर प्रदेश में मायावती की सरकार भी अच्छी तरह इस बात को समझ रही थी कि एक बार जाति की राजनीति पर धर्म की राजनीति हावी होने का ख़ामियाज़ा प्रदेश में जातिगत राजनीति पर निर्भर सभी दलों को उठाना पड़ा था (जिसे टकसाली पत्रकार 'मण्डल पर मन्दिर के हावी होने' का नाम देते हैं)। अगर ऐसा फिर होता तो मायावती को मुख्य रूप से इसका राजनीतिक नुक़सान उठाना पड़ता। इसलिए उत्तर प्रदेश में भी मन्दिर मुद्दे को लेकर शान्ति भंग होने से रोकने के लिए मायावती ने अभूतपूर्व इन्तज़ाम किये थे। तीसरी और आख़िरी बात यह कि देश के शासक वर्गों को ऐसे किसी धार्मिक ध्रुवीकरण की फ़िलहाल कोई ज़रूरत भी नहीं थी। आप याद कर सकते हैं कि जब-जब मन्दिर विवाद को दंगे-फ़साद में तब्दील कर जनता को बाँटा गया है, तब-तब देश किसी न किसी राजनीतिक या आर्थिक संकट का शिकार था। 1949 में जब कुछ साम्प्रदायिक फ़ासीवादी तत्वों ने बाबरी मस्जिद के गुम्बद के नीचे राम की मूर्तियाँ रख दी थीं, उस समय आज़ादी के बाद देश की पूँजीवादी सत्ता अभी स्थिरीकरण की प्रक्रिया में थी और देश के कई हिस्सों में किसान संघर्ष चल रहे थे। देश दरिद्रता की स्थिति में था। 1986 में जब मस्जिद का ताला खुलवाया गया और बाद में शिलान्यास हुआ तब भी देश भयंकर आर्थिक संकट से गुज़र रहा था; बेरोज़गारी भयंकर रूप अख़्तियार कर चुकी थी, मुद्रास्फीति का हाल बुरा था और विदेशी क़र्ज़ से देश की अर्थव्यवस्था चरमरा रही थी।

1990 के दशक की शुरुआत में जब मण्डल और मन्दिर दोनों का मुद्दा उछाला गया तो देश की अर्थव्यवस्था डाँवाडोल थी; देश का सोना गिरवी रखा जा चुका था; महँगाई आसमान छू रही थी; बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार और ग़रीबी से देश की जनता में भयंकर गुस्सा था। ये सारे मौक़े ऐसे थे, जिसमें शासक वर्गों को इस बात की दरकार थी कि जनता का ध्यान उन वास्तविक मुद्दों से हट जाये जिनका उसकी ज़िन्दगी पर असर पड़ता है। इसके लिए धार्मिक उन्माद और जातिगत वैमनस्य के कार्ड का अलग-अलग समय पर इस्तेमाल किया गया। इस बार अयोध्या पर न्यायालय का फ़ैसला आने से पहले ऐसी कोई संकट की स्थिति नहीं है। हालाँकि, अभी वैश्विक आर्थिक संकट के झटके आने जारी हैं, लेकिन वैश्विक वित्तीय बाज़ार से कम समेकित होने के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि पर उसका असर तात्कालिक तौर से विनाशकारी नहीं है।

पिछले दो कार्यकाल से संप्रग सरकार स्थिरता के साथ काबिज़ है और उसे फ़िलहाल कोई ख़तरा दिखलायी नहीं पड़ रहा है। दिक़्क़तें तो हैं लेकिन कोई संकट सामने मुँह बाये नहीं खड़ा है। ऐसे में शासक वर्गों को धार्मिक उन्माद के रास्ते जनता का ध्यान भटकाने और ध्रुवीकरण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उल्टे इससे नुक़सान हो सकता है। इसी समय राष्ट्रमण्डल खेल चल रहे हैं, जिसके ज़रिये देश की नेताशाही-नौकरशाही और पूँजीपति वर्ग अरबों रुपये पीट चुके हैं और इसके बाद विदेशी निवेश के लिए दिल्ली को पेश करने की पूरी तैयारी है। ऐसे में कोई भी दंगा विदेशी निवेश को हतोत्साहित कर सकता है। मौजूदा वैश्विक संकट के आने को अधिकतम सम्भव टालने के लिए देशी पूँजीपति वर्ग को इस निवेश की निरन्तरता की आवश्यकता है। इसमें वह कोई भी बाधा नहीं चाहता है। इस तरह हम देख सकते हैं कि शासक वर्ग को मन्दिर मुद्दे पर ध्रुवीकरण की कोई ज़रूरत नहीं थी।

उपरोक्त तीन कारणों के चलते इस बार मन्दिर मुद्दे पर कोई दंगा-फ़साद भड़कने का काम नहीं हुआ।

(अगले अंक में जारी)

तीन-दिवसीय द्वितीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी गोरखपुर में सम्पन्न

21वीं सदी का मज़दूर आन्दोलन : नयी चुनौतियाँ, नये रास्ते, नयी दिशा

विहान की टोली गीत प्रस्तुत करते हुए। विभिन्न वक्ता अवस्थिति पत्र प्रस्तुत करते हुए।

साथी अरविन्द की स्मृति में पिछले वर्ष प्रथम अरविन्द स्मृति संगोष्ठी का आयोजन दिल्ली में हुआ था, जिसमें देश-विदेश से क्रान्तिकारी संगठनों के प्रतिनिधियों, कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों और शोधकर्ताओं ने शिरक़त की थी। इस वर्ष द्वितीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी को एक दिन की बजाय तीन दिन का रखा गया और इसे गोरखपुर में आयोजित किया गया। पिछली बार के विषय को ही विस्तार देते हुए इस बार '21वीं सदी में भारत का मज़दूर आन्दोलन : निरन्तरता और परिवर्तन, दिशा और सम्भावनाएँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ' विषय पर विस्तृत चर्चा हुई।

संगोष्ठी की शुरुआत 26 जुलाई को गोरखपुर के चित्रगुप्त मन्दिर के परिसर में हुई। पहले दिन 'शहीदों के गीत' के साथ साथी अरविन्द की तस्वीर पर माल्यार्पण किया गया और उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए संगोष्ठी की शुरुआत की गयी। दिल्ली विश्वविद्यालय से आयी छात्रों-नौजवानों की सांस्कृतिक टोली ने गीत पेश किये। इसके बाद पहले सत्र की शुरुआत हुई। पहले सत्र में साथी अरविन्द की जीवन-साथी कॉमरेड मीनाक्षी ने अरविन्द स्मृति न्यास की स्थापना की घोषणा की और साथ ही उसके लक्ष्यों की एक रूपरेखा प्रस्तुत की। इसके बाद राहुल फ़ाउण्डेशन के साथी सत्यम ने अरविन्द स्मृति न्यास की योजनाओं में विभिन्न ज़िम्मेदारी उठाने वाले साथियों और प्रमुख न्यासकर्ताओं का परिचय सदन से कराया और औपचारिक रूप से अरविन्द स्मृति न्यास की स्थापना हुई। इस पहले सत्र में साथी अरविन्द को याद करते हुए गोरखपुर के वरिष्ठ बुद्धिजीवी श्री फ़तेह बहादुर सिंह, प्रसिद्ध हिन्दी कहानीकार मदन मोहन और मुम्बई से आये आनन्द ने वक्तव्य रखे। इस सत्र की अध्यक्षता मुम्बई के 'विस्थापन विरोधी जनान्दोलन' के साथी शिरीष मेंढी, छत्तीसगढ़ माइंस श्रमिक संघ के सचिव और छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा के उपाध्यक्ष साथी गणेशराम चौधरी, अनुराग ट्रस्ट की प्रमुख न्यासकर्त्री श्रीमती कमला पाण्डेय और हिन्दी की चर्चित कवयित्री कात्यायनी ने की।

पहले दिन के दूसरे सत्र में पत्रिका 'मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का आह्वान' के सम्पादक अभिनव ने संगोष्ठी के अपने प्रमुख अवस्थिति पत्र की प्रस्तुति की। इस पेपर का विषय था – 'भूमण्डलीकरण के दौर में मज़दूर वर्ग के आन्दोलन और प्रतिरोध के नये रूप और रणनीतियाँ'। पेपर की प्रस्तुति करते हुए अभिनव ने कहा कि पूरी दुनिया में आज मज़दूर आन्दोलन गम्भीर संकट का शिकार है। एक ओर तो इस संकट का कारण इस बात में निहित है कि 'तीसरी दुनिया' के अधिकांश देशों में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ताक़तें कार्यक्रम के मामले में एक ग़लत समझ का शिकार हैं। अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी समूह तुर्की, इण्डोनेशिया, भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, मिस्र, ब्राज़ील, अर्जेण्टीना, मेक्सिको, दक्षिण अफ़्रीका जैसे विचारणीय पूँजीवादी विकास वाले देशों में भी आज तक 1960 के दशक में माओ द्वारा तीसरी दुनिया के देशों में क्रान्ति के कार्यक्रम के लेकर पेश किये गये सामान्यीकृत सूत्रीकरण से चिपके हुए हैं और सामन्तवाद-साम्राज्यवाद विरोधी नवजनवादी क्रान्ति की कार्यदिशा को लागू कर रहे हैं। जबकि इन देशों में पूँजीवादी उत्पादन पद्धति प्रमुख उत्पादन पद्धति बन चुकी है और एक विशालकाय मज़दूर वर्ग अस्तित्व में आ चुका है। और वास्तव में तो वे नवजनवादी क्रान्ति की कार्यदिशा को भी ढंग से लागू नहीं कर रहे हैं क्योंकि वे माओ की इस शिक्षा को भूल जाते हैं कि नवजनवादी क्रान्ति की मंज़िल में भी मज़दूर वर्ग ही नेतृत्वकारी शक्ति होता है; किसान मुख्य शक्ति होते हैं। लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी मज़दूर वर्ग की ही हिरावल होती है और मज़दूर वर्ग के बीच लेनिनवादी पद्धति से काम किये बग़ैर ऐसी किसी कम्युनिस्ट पार्टी का निर्माण सम्भव ही नहीं है। लेकिन नवजनवादी क्रान्ति की कार्यदिशा का अनुसरण करने वाले अधिकांश ग्रुप मज़दूरों के बीच काम पर या तो ज़ोर ही नहीं देते, या फिर वे मज़दूर वर्ग के बीच संशोधनवादी ट्रेडयूनियनों के समान अर्थवाद और ट्रेडयूनियनवाद करते हैं। फ़र्क़ बस इतना होता है कि वे ईमानदारी के साथ ज़्यादा गर्म और जुझारू ट्रेडयूनियनवाद और अर्थवाद करते हैं। ग़लत कार्यक्रम और मज़दूर वर्ग के बीच काम पर सोच या फिर सही ज़ोर और तरीक़े का अभाव मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के संकटग्रस्त होने का पहला कारण है।

अभिनव ने आगे कहा कि दूसरा कारण है 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध से विश्व पूँजीवाद की कार्यप्रणाली में आये बदलाव। इन बदलावों की चर्चा करते हुए विश्व पूँजीवाद का एक संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया। 1870 से लेकर 1945 तक के समय की चर्चा करते हुए अभिनव ने मार्क्स के उन कथनों की ओर ध्यान दिलाया जिनमें मार्क्स ने एक रूप में भूमण्डलीकरण का पूर्वानुमान किया था। वित्तीय पूँजी के उदय से पूर्व के पूँजीवाद की चर्चा के बाद पेपर में 1870 की पहली वैश्विक पूँजीवादी संकट की चर्चा आती है। यह मन्दी साम्राज्यवाद के उदय के दौर के साथ ही आयी थी। राष्ट्रीय सीमाओं में अति-उत्पादन और पूँजी की प्रचुरता का संकट उसी रूप में उपस्थित हुआ था, जिस रूप में मार्क्स ने उसके बारे में बताया था। इस मन्दी के साथ ही विश्व पूँजीवाद ने अपनी कार्यप्रणाली में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये जिनका शानदार अध्ययन लेनिन ने अपनी रचना 'साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था' में किया है। इसमें सबसे प्रमुख थे वित्तीय पूँजी का प्रभुत्व, बैंकों का उदय, विश्व का साम्राज्यवादी ताक़तों के बीच बँटवारा और उसके लिए युद्ध और पूँजी का निर्यात। जैसा कि लेनिन ने बताया था, 20वीं सदी के दूसरे दशक में उदीयमान साम्राज्यवादी ताक़तों और पारम्परिक साम्राज्यवादी ताक़तों के बीच दुनिया के पूँजीवादी लूट के बँटवारे के लिए प्रथम विश्व युद्ध हुआ। इस युद्ध से उबरने की प्रक्रिया चल ही रही थी कि पूँजीवादी विश्व अब तक की सबसे बड़ी मन्दी का शिकार हो गया : 1930 के दशक की महामन्दी।

इस महामन्दी के बाद द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ और इसका समापन फ़ासीवादी जर्मनी और इटली की हार, विश्व के समाजवादी और पूँजीवादी शिविरों में बँटवारे और पुनर्निर्माण कार्यक्रमों के बूते विश्व पूँजीवाद के चौधरी के तौर पर संयुक्त राज्य अमेरिका के उदय के साथ हुआ। सोवियत संघ के अजेय शक्ति के रूप में उभर चुका था और वहाँ समाजवाद के महान प्रयोगों के ज़रिये जनता के जीवन-स्तर में ज़बर्दस्त स्तरोन्नयन हो रहा था। औद्योगिक उत्पादन से लेकर वैज्ञानिक तरक़्क़ी तक, सोवियत संघ विश्व में सबसे तेज़ी से आगे बढ़ रहा था। मन्दी के अनुभव और समाजवादी शिविर की मौजूदगी के दबाव में पूँजीवादी देशों में "कल्याणकारी" राज्य का उदय हुआ जिसके तहत कीन्सियाई नुस्खों को अमल में लाया गया। उत्पादन को पूरी तरह बाज़ार के रहम पर छोड़ने की बजाय पूँजीवादी राज्य का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप होता था और मज़दूरों और कर्मचारियों को तरह-तरह की छूटें और सहूलियतें दी गयीं। वित्तीय पूँजी पर भी कई तरह के विनियमन लादे गये। 1930 की मन्दी के बाद के दौर में अमेरिका में फ़ोर्डिज़्म की उत्पादन तकनीक का उदय हुआ जिसके तहत एक ही दैत्याकार कारख़ाने में पूरे माल का उत्पादन किया जाता था। इन कारख़ानों में कई बार 30 से 40 हज़ार मज़दूर भी काम करते थे। वे वास्तव में कारख़ाने नहीं बल्कि एक छोटी-सी बस्ती हुआ करते थे। फ़ोर्डिज़्म के दौर में ही आज हम जिस प्रकार के ट्रेडयूनियन आन्दोलन को जानते हैं उसका उदय हुआ। यानी, पूरी तरह कारख़ाना-केन्द्रित मज़दूर आन्दोलन। फ़ोर्डिस्ट असेम्बली लाइन पर हज़ारों मज़दूरों के साथ होने वाला उत्पादन लम्बे समय तक पूँजीवाद का प्रमुख अधिशेष नियोजन का मैकेनिज़्म बना रहा। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से लेकर 1970 के दशक के शुरुआती वर्षों तक का दौर विश्व पूँजीवाद के लिए एक स्वर्णिम काल था। इस दौर में उत्पादक शक्तियों के युद्ध में हुए विनाश की भरपाई के बूते पूँजीवाद तेज़ी के एक दौर का साक्षी बना और विशेष रूप से अमेरिकी पूँजीवाद। पूँजी के कार्य का क्षेत्र राष्ट्र-राज्य थे क्योंकि "कल्याणकारी" भूमण्डलीकृत विश्व में काम ही नहीं कर सकता। वह हस्तक्षेपकारी नीतियों के ज़रिये श्रम को एक हद तक संरक्षण प्रदान करता है और पूँजी के राष्ट्रपारीय प्रवाह पर तरह-तरह की रोक लगाकर देशी पूँजी को भी संरक्षण प्रदान करता है।

लेकिन 1970 के दशक के साथ ही पूँजी फिर से इतनी फूल चुकी थी कि राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर और "कल्याणकारी" ढाँचे के भीतर उसका दम घुटने लगा। नतीजे के रूप में 1973 का विश्वव्यापी पूँजीवादी संकट, डॉलर-गोल्ड मानक का ढहना और ओपेक तेल संकट पैदा हुआ। इस संकट के बाद विश्व में उस प्रक्रिया की शुरुआत हुई जिसे हम भूमण्डलीकरण के रूप में जानते हैं। इसके साथ ही विश्व में फ़ोर्डिज़्म का भी पतन शुरू हुआ। 1980 के दशक में वे सभी संस्थाएँ एक-एक करके अस्तित्व में आने लगीं जिनसे भूमण्डलीकरण की पहचान की जाती है। भूमण्डलीकरण के दौर में अभिनव ने तीन महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों की ओर ध्यानाकर्षित किया। पहला था नवउदारवादी भूमण्डलीकरण की नीतियों के ज़रिये श्रम बाज़ारों को पूरी तरह लचीला बना देना; दूसरा था, फ़ोर्डिज़्म का पतन; और तीसरा था, सूचना प्रौद्योगिकी और संचार क्रान्ति। इन परिवर्तनों ने दुनियाभर में श्रम के अनौपचारिकीकरण को जन्म दिया, बढ़ाया और सम्भव बनाया। श्रम के अनौपचारिकीकरण के साथ ही एक वैश्विक असेम्बली लाइन अस्तित्व में आने लगी। अब उत्पादन विशालकाय कारख़ानों की बजाय कई छोटे कारख़ानों में होने लगा। कारख़ाना के आधार पर मज़दूरों को बिखराया जाने लगा। यह प्रक्रिया विकासशील देशों में अभी भी जारी है। इसके साथ ही पारम्परिक ट्रेडयूनियन आन्दोलन का ह्रास होने लगा। आँकड़ों के ज़रिये, पेपर में दिखलाया गया कि कुल औद्योगिक मज़दूर वर्ग का 90 प्रतिशत से भी ज़्यादा हिस्सा अनौपचारिक क्षेत्र में काम करता है। इसके बाद इस अनौपचारिक क्षेत्र के मज़दूर वर्ग की चारित्रिक विशेषताओं पर चर्चा की गयी। यह बताया गया कि यह अनौपचारिक मज़दूर वर्ग एक प्रकार से 'फुटलूज़ लेबर' है। इसे किसी एक कार्यस्थान पर नहीं पकड़ा जा सकता। पेशागत गतिमानता इतनी ज़्यादा है कि इस मज़दूर वर्ग को उसकी रिहायश में पकड़ना होगा। कारख़ाना आधारित ट्रेडयूनियन आन्दोलन की असफलता के पीछे एक बड़ा कारण यह है कि फ़ोर्डिज़्म के दौर की कार्यप्रणाली को वह उत्तरफ़ोर्डिस्ट दौर में लागू करना चाहता है और वह अब सम्भव रह नहीं गया है। दूसरे, आज का

(पेज 7 पर जारी)

21वीं सदी का मज़दूर आन्दोलन : नयी चुनौतियाँ, नये रास्ते, नयी दिशा

(पेज 6 से आगे)

प्रभुत्वशाली ट्रेडयूनियन आन्दोलन इस मज़दूर वर्ग को पिछड़ा हुआ मानता है और उनमें से भी संशोधनवादी ट्रेडयूनियनों के लिए इस 90 फ़ीसदी मज़दूर आबादी की समस्याएँ सरोकार का विषय ही नहीं हैं।

पेपर में यह भी दिखलाया गया कि अनौपचारिक मज़दूरों के बढ़ते जाने और उनके क्रान्तिकारी चरित्र को लेकर मार्क्स से लेकर लेनिन तक ने लिखा है और यह फ़ोर्डिस्ट दौर में पैदा हुआ एक पूर्वाग्रह और उसका हैंगओवर है जो आन्दोलन को कारख़ाने से निकलने नहीं दे रहा है और कारख़ाने के भीतर उसकी मौजूदगी बिना रिहायशी संगठन के आधार के, अधिक से अधिक मुश्किल होती जा रही है। अभिनव ने कहा कि जब तक मज़दूर आन्दोलन असंगठित/अनौपचारिक मज़दूर आबादी के प्रति अपने इस रवैये को छोड़ता नहीं है, तब तक मज़दूर आन्दोलन का यह संकट बरकरार रहेगा। आज के समय में मज़दूरों के हिरावल को उन्हें संगठित करने के लिए उनकी बस्तियों और रिहायशी इलाक़ों में जाना होगा; वहाँ उनकी इलाक़ाई और पेशागत ट्रेडयूनियनें खड़ी करनी होंगी। इन ट्रेडयूनियनों को संगठित किये बिना कारख़ाने में भी मज़दूरों की संगठित लड़ाई खड़ी कर पाना आज अधिक से अधिक कठिन होता जा रहा है। दूसरी बात यह कि इन इलाक़ाई ट्रेडयूनियनों को खड़ा कर पाना और मज़दूर वर्ग को रिहायशी इलाक़ों और पेशों के आधार पर संगठित करना एक तरफ़ चुनौतीपूर्ण है तो वहीं इसकी क्रान्तिकारी सम्भावनाएँ असीम हैं। अनौपचारिक मज़दूर वर्ग पेशागत संकुचन, अर्थवाद, ट्रेडयूनियनवाद, अराजकतावादी संघाधिपत्यवाद आदि जैसी मज़दूर वर्ग-विरोधी प्रवृत्तियों से अपेक्षाकृत कम प्रभावित होता है और किसी एक कारख़ाना-मालिक को दुश्मन समझने की बजाय पूरे कारख़ाना मालिकों के वर्ग को दुश्मन मानता है और अधिक वर्ग सचेत होता है। यह मज़दूर राज्यसत्ता के चरित्र को भी अपेक्षाकृत जल्दी समझता है। यह (जैसा कि पारम्परिक ट्रेडयूनियनवादी समझते हैं) पिछड़ा और अकुशल नहीं होता है। यह नया अनौपचारिक मज़दूर वर्ग अत्यधिक विशाल, बहुकुशल, वर्ग सचेत और राजनीतिक रूप से अधिक सम्भावना-सम्पन्न है। चुनौती बस यह है कि इसे रिहायशी और पेशागत आधार पर संगठित करने का कार्य रचनात्मक रूप से किया जाये।

इसके अलावा कोई भी रिहायशी ट्रेडयूनियन ऐसे मसलों पर संघर्ष कर सकती है जिन पर एक पारम्परिक कारख़ाना-आधारित ट्रेडयूनियन नहीं कर सकती। जैसे कि पानी, बिजली, आवास, सड़क, शिक्षा और चिकित्सा जैसे अधिकार जिन्हें कई बार नागरिक माँगों की संज्ञा दी जाती है। लेकिन ये माँगें मज़दूर वर्ग को सीधे पूँजीवादी राज्यसत्ता के समक्ष खड़ा करती हैं और पूँजीवाद को कठघरे में लाती हैं। राजनीतिक चेतना के स्तरोन्नयन के मद्देनज़र और बुर्जुआ जनवाद के छल-छद्म उजागर करने के मद्देनज़र इन माँगों में ज़बर्दस्त सम्भावना होती है क्योंकि तब मज़दूर वर्ग अपनी नागरिक पहचान पर दावा ठोंकता है। साम्राज्यवाद की कार्यप्रणाली में हुए परिवर्तनों ने जहाँ पारम्परिक ट्रेडयूनियनों को मुश्किल बनाकर मज़दूर वर्ग के सामने एक चुनौती पेश की, वहीं इसने मज़दूर आन्दोलन को राजनीतिक तौर पर एक नयी मंज़िल में ले जाने के लिए एक नयी सम्भावना भी उत्पन्न कर दी है। लेकिन इस सम्भावना को यथार्थ में बदलने के लिए मज़दूर वर्ग के हिरावल दस्ते को नयी सोच और नयी दिशा के साथ काम करना होगा और इसके लिए इन परिवर्तनों को गहराई से समझना होगा।

●

इस प्रमुख अवस्थिति पत्र के समापन के बाद पहला दिन समाप्त होने की ओर था और दो वक्ताओं स्त्री मुक्ति लीग की शिवानी और नौजवान भारत सभा के प्रेमप्रकाश, के हस्तक्षेप के बाद पहला दिन समाप्त हुआ।

दूसरे दिन के पहले सत्र की अध्यक्षता राहुल फ़ाउण्डेशन के साथी जी.पी. भट्ट और छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा के साथी शेख़ अंसार ने की। पहले सत्र में अभिनव द्वारा पेश प्रमुख पत्र पर अपनी बात रखने वालों में 'इन्क़लाबी मज़दूर' के नगेन्द्र, 'उज्ज्वल ध्रुवतारा' के कॉमरेड जी.पी. मिश्रा, नौजवान भारत सभा के नवीन, बिहार से आये कॉमरेड चन्द्रेश्वर राम और दिल्ली मेट्रो कामगार यूनियन के अजय स्वामी प्रमुख थे। 'इन्क़लाबी मज़दूर' के नगेन्द्र ने पेपर पर टिप्पणी करते हुए कहा कि आज भी कारख़ाना-केन्द्रित मज़दूर आन्दोलन ही प्रमुख हैं और फ़ोर्डिज़्म के पराभव के बाद भी संघर्ष को उत्पादन के स्थल पर ही संगठित किया जा सकता है। इसे रिहायश के इलाक़े में ले जाने का अर्थ होगा संघर्ष उत्पादन से उपभोग की ओर ले जाना; नगेन्द्र ने अपनी अवस्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा कि रिहायशी यूनियनें भी बनानी होंगी लेकिन कारख़ाना-आधारित ट्रेडयूनियनों का ज़माना बीता नहीं है। बाक़ी वक्ताओं ने प्रमुखत: पेपर की अवस्थिति का समर्थन किया।

साथी नगेन्द्र की आलोचनात्मक टिप्पणी का जवाब देते हुए अभिनव ने कहा कि कारख़ाना-केन्द्रित मज़दूर पर ज़िद के साथ ज़ोर देना आज की सच्चाइयों से मुँह मोड़ने जैसा है। निश्चित रूप से जहाँ भी सम्भव हो वहाँ कारख़ाना-आधारित यूनियनें भी बनायी जानी चाहिए, लेकिन वे भी आगे तभी बढ़ सकती हैं जब रिहायशी आधार पर संगठित यूनियन मौजूद हो। इसके अतिरिक्त, उत्पादन से उपभोग के क्षेत्र में जाने की बात बेतुकी है। साथी नगेन्द्र यह भूल गये कि पूँजीवादी समाज में मज़दूर की श्रमशक्ति भी एक माल होती है और उसके उत्पादन और पुनरुत्पादन की जगह कारख़ाना नहीं बल्कि रिहायश होती है। अभिनव ने कहा कि साथी नगेन्द्र की अवस्थिति में पारम्परिक ट्रेडयूनियनवाद और अर्थवाद की गन्ध आ रही है। उन्होंने नगेन्द्र के इस तर्क की आलोचना की कि आवास, चिकित्सा, पानी, बिजली, सड़क, सफ़ाई जैसे नागरिक मुद्दों पर संघर्ष एन.जी.ओ. का काम है। अभिनव ने कहा कि यह एक त्रासद स्थिति है कि इन मुद्दों को एन.जी.ओ. ले उड़े हैं। वास्तव में तो यह ज़बर्दस्त राजनीतिक सम्भावना-सम्पन्नता वाले मुद्दे हैं जिन्हें क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट संगठनों को उठाना चाहिए। अभिनव ने कहा कि साथी नगेन्द्र की सोच केवल कारख़ाना-केन्द्रित आर्थिक मुद्दों पर संघर्ष की है और यह मज़दूर वर्ग के आन्दोलन को उसी गोल चक्कर में घुमाता रहेगा, जिसे हम अर्थवाद-ट्रेडयूनियनवाद-सुधारवाद और अराजकतावादी संघाधिपत्यवाद के नाम से जानते हैं।

दूसरे सत्र की शुरुआत छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा के साथी गणेशराम चौधरी के अवस्थिति पत्र 'मज़दूर आन्दोलन की नयी दिशा : सम्भावनाएँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ' की प्रस्तुति के साथ हुई। पेपर की शुरुआत मज़दूर आन्दोलन में मौजूद विजातीय प्रवृत्तियों पर चर्चा के साथ हुई। सबसे पहले साथी गणेशराम ने संशोधनवाद, ट्रेडयूनियनवाद, अर्थवाद, सुधारवाद, अराजकतावाद और गैर-पार्टीवाद की आलोचना पेश की। "वामपन्थी" दुस्साहसवादियों की आलोचना करते हुए बताया गया कि वे भी अर्थवाद के ज़्यादा जुझारू संस्करण को पेश करते हैं। मज़दूर वर्ग में राजनीतिक कार्य की कोई सुसंगत समझ आज आन्दोलन में मौजूद नहीं है। जो दुस्साहसवादी नहीं भी हैं और जनदिशा की बात करते हैं, वे नवजनवादी क्रान्ति की कार्यदिशा को मानने के कारण मज़दूर वर्ग के काम की आवश्यकता को ही सही ढंग से नहीं समझते। छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा ने शंकर गुहा नियोगी के नेतृत्व में एक ओर संशोधनवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष किया तो वहीं उसने दुस्साहसवाद की भी कटु आलोचना की। साथी नियोगी मानते थे कि आज मज़दूर वर्ग को एक क्रान्तिकारी जनदिशा की समझ से लैस मार्क्सवादी-लेनिनवादी बोल्शेविक पार्टी की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा के प्रयोग ने रिहायशी आधार पर बनी यूनियन, मज़दूरों को राजनीति रूप से प्रशिक्षित कर संस्थाओं का निर्माण करना और जनाधार का निर्माण करने के महत्त्व को समझाया। नियोगी जी की विरासत से हमें आज की "वामपन्थी" दुस्साहसवादी वैचारिक और राजनीतिक दरिद्रता को समझने में सहायता मिलती है। आगे साथी गणेशराम चौधरी ने इस दुस्साहसवादी धारा की विस्तृत आलोचना रखी, जिसकी नुमाइन्दगी भाकपा (माओवादी) कर रही है। उन्होंने बताया कि इस दुस्साहसवाद ने छत्तीसगढ़ के मज़दूर आन्दोलन में भी सेंध लगायी है और इस धारा के विरुद्ध हालिया संघर्ष में जनदिशा को लागू करने वाली ताक़तों ने विजय हासिल की है। साथ ही साथी गणेशराम ने बताया कि छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा में संशोधनवाद के भटकाव का भी एक इतिहास मौजूद रहा था। इस भटकाव के सार-संकलन की जिस समय ज़रूरत थी, उसी समय शंकर गुहा नियोगी की हत्या हो गयी। उसके बाद, उनके अनुसरण-कर्ताओं ने इन प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ संघर्ष किया। आज मज़दूर वर्ग को राजनीतिक रूप से शिक्षित-प्रशिक्षित करने, क्रान्तिकारी जनसंस्थाएँ खड़ी करने, पेशागत और इलाक़ाई ट्रेडयूनियनों का निर्माण करने और एक अखिल भारतीय क्रान्तिकारी पार्टी का निर्माण करना मज़दूर आन्दोलन के एजेण्डे पर उपस्थित सबसे महत्त्वपूर्ण सवाल हैं।

इसके बाद पंजाबी पत्रिका 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक साथी सुखविन्दर ने अपना अवस्थिति पत्र पेश किया। इस पेपर का शीर्षक था 'भारत का मज़दूर आन्दोलन और कम्युनिस्ट आन्दोलन : अतीत के सबक़, वर्तमान समय की सम्भावनाएँ और चुनौतियाँ'। सुखविन्दर ने पेपर की मुख्य प्रस्थापना पेश करते हुए कहा कि भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन में मज़दूर आन्दोलन को संगठित करने और मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक कामों को लेकर एक सही लेनिनवादी समझदारी का अभाव शुरू से ही रहा था। राजनीतिक संघर्ष और आर्थिक संघर्ष के बीच के अन्तर और उनके अन्तर्सम्बन्ध को भारत का कम्युनिस्ट नेतृत्व कभी सही ढंग से समझ नहीं पाया। 1920 से 1951 के दौर में मज़दूरों के बीच कम्युनिस्टों के काम को ट्रेडयूनियनवाद और अर्थवाद का शिकार माना जा सकता है। 1951 के बाद भारत की कम्युनिस्ट पार्टी संशोधनवाद के गड्ढे में जा गिरी। 1967 में संशोधनवाद की प्रतिक्रिया के रूप में जो लाइन पैदा हुई वह "वामपन्थी" दुस्साहसवाद के दूसरे छोर पर जा पहुँची और उसे जनकार्य अपने आपमें संशोधनवाद लगने लगा। नतीजा यह हुआ कि एक लम्बे समय तक तो इस धारा के ग्रुपों ने ट्रेडयूनियनों को भी संगठित नहीं किया। जब नक्सलबाड़ी उभार का दमन हुआ और मार्क्सवादी-लेनिनवादी कम्युनिस्ट अलग-अलग धड़ों में बँट गये तो जनकार्यों की टुकड़ों-टुकड़ों में शुरुआत हुई। लेकिन जनदिशा की कोई समझदारी अभी भी नहीं थी। ट्रेडयूनियन कार्य के नाम पर लेनिनवादी तरीक़े से मज़दूर वर्ग को आर्थिक माँगों पर लड़ना सिखाने और राजनीतिक रूप से उन्हें प्रशिक्षित करने का काम नहीं हो रहा था, बल्कि जुझारू क़िस्म का ट्रेडयूनियनवाद हो रहा था। इस प्रकार जहाँ तक मज़दूर आन्दोलन की बात थी, तो वह अर्थवाद, ट्रेडयूनियनवाद, सुधारवाद और अराजकतावाद के भँवर से कभी निकल नहीं पाया।

सुखविन्दर ने आगे भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन और नेतृत्व द्वारा की गयी गम्भीर चूकों की ओर ध्यानाकर्षित करते हुए तेलंगाना संघर्ष में कम्युनिस्ट नेतृत्व द्वारा की गयी ग़लती, 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान लिये गये ग़लत निर्णय, नौसेना विद्रोह के समय चूके गये मौक़े, आदि का ज़िक्र करते हुए बताया कि भारत का कम्युनिस्ट नेतृत्व बौद्धिक और वैचारिक-राजनीतिक तौर पर बेहद कमज़ोर था और प्रमुख निर्णयों के लिए अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेतृत्व पर भी उसकी काफ़ी निर्भरता रहती थी। यही कारण था कि एक लम्बे समय तक भारत की कम्युनिस्ट पार्टी बिना किसी कार्यक्रम के काम करती रही; यही कारण था कि अपने देश के उत्पादन सम्बन्धों के गम्भीर अध्ययन का काम पार्टी ने कभी अपने हाथ में लिया ही नहीं; यही कारण था कि संशोधनवाद के विरुद्ध कोई संघर्ष चला पाने में नेतृत्व असफल रहा। 1951 में तेलंगाना की पराजय के बाद पार्टी संशोधनवाद का शिकार हो गयी। 1967 में नक्सलबाड़ी उभार अपनी ज़बर्दस्त सम्भावनाओं के बावजूद वामपन्थी" दुस्साहसवाद के गड्ढे में चला गया। भारतीय क्रान्ति के कार्यक्रम को लेकर कम्युनिस्ट आन्दोलन में पहले भी सही समझदारी का अभाव था और नक्सलबाड़ी उभार के दौर में भी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट नेतृत्व के पास कोई विश्लेषण मौजूद नहीं था और 1963 में माओ द्वारा पेश तीसरी दुनिया के देशों में नवजनवादी क्रान्ति की लाइन को ही पत्थर की लकीर मानकर, विचारधारा का मुद्दा मानकर अपने देश की ठोस परिस्थितियों के ठोस विश्लेषण का विकल्प बना लिया गया। नतीजतन, आज मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिविर मूलत: और मुख्यत: विघटित हो चुका है। ऐसे में आज के संजीदा और सोचने-समझने वाले कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के सामने जो प्रमुख कार्यभार है, वह है पार्टी-निर्माण का। मा.ले. शिविर के नेतृत्व का बड़ा हिस्सा अवसरवादी हो चुका है और उनके बीच आपसी एकता वार्ताओं से कोई अखिल भारतीय पार्टी नहीं बनायी जा सकती। आज नये कम्युनिस्ट तत्व का निर्माण करते हुए अखिल भारतीय पार्टी निर्माण की ओर आगे बढ़ना होगा।

सुखविन्दर के पेपर के समापन के साथ दूसरा दिन समाप्त हुआ। दूसरे दिन के तीनों सत्रों में अध्यक्षता की ज़िम्मेदारी राहुल फ़ाउण्डेशन के जी.पी. भट्ट और छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा के शेख़ अंसार ने उठायी। तीसरे पेपर के बाद हस्तक्षेप करने वालों में नगेन्द्र, नवीन, सत्या, डॉ. अमरनाथ द्विवेदी, अभिनव, व शेख़ अंसार प्रमुख थे।

आख़िरी दिन की शुरुआत में बिगुल मज़दूर दस्ता के तपीश मैण्डोला ने अपने पेपर 'विश्व पूँजीवाद की संरचना एवं कार्यप्रणाली में बदलाव तथा भारत का मज़दूर आन्दोलन' पेश किया। तपीश ने कहा कि हम आज भी साम्राज्यवाद के दौर में जी रहे हैं, हम आज भी सर्वहारा क्रान्तियों के दौर में जी रहे हैं। लेकिन आज का साम्राज्यवाद लेनिन के समय के साम्राज्यवाद से कहीं ज़्यादा परजीवी, खोखला और मरणासन्न है। अपनी तमाम सैन्य शक्ति के बावजूद यह अन्दर से ही ढह रहा है। आज यह अपनी शक्ति के बल पर नहीं बल्कि क्रान्तिकारी क्षमता वाले प्रतिरोध की अनुपस्थिति में टिका हुआ है। आज के कुल पूँजी निवेश में 90 प्रतिशत से भी ज़्यादा पूँजी सट्टेबाज़ी, शेयर बाज़ार, विज्ञापन आदि जैसे अनुत्पादक स्थानों पर लगी हुई है। राष्ट्रपारीय निगम कई देशों में शासनकारी स्थिति में दिख रहे हैं और राष्ट्र-राज्यों की भूमिका सतही तौर पर देखने पर ख़त्म होती-सी दिखती है। लेकिन वास्तव में राष्ट्र-राज्य की भूमिका का रूपान्तरण हुआ है, उसका समापन नहीं। आज भी किसी राष्ट्रपारीय निगम के हितों की रक्षा का सवाल आता है तो उसके पितृदेश का पूँजीपति वर्ग और पूँजीवादी राज्यसत्ता ही उपस्थित होती है। आज के साम्राज्यवाद के दौर में किसी विश्वयुद्ध की सम्भावना कम रह गयी है। आज महाद्वीपीय और क्षेत्रीय युद्ध तो होंगे लेकिन कोई विश्वयुद्ध जैसी

(पेज 2 पर जारी)

कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में 100 से भी अधिक पावरलूम कारख़ानों के मज़दूरों ने क़ायम की जुझारू एकजुटता

शक्तिनगर के मज़दूरों की आठ दिन और गौशाला, कश्मीर नगर व माधोपुरी के मज़दूरों की 15 दिन की हड़ताल से हासिल हुई शानदार जीत

कारख़ाना मज़दूर यूनियन, लुधियाना के नेतृत्व में पहले न्यू शक्तिनगर के 42 कारख़ानों के मज़दूरों की 24 अगस्त से 31 अगस्त तक और फिर गौशाला, कश्मीर नगर और माधोपुरी के 59 कारख़ानों की 16 सितम्बर से 30 सितम्बर तक शानदार हड़तालें हुईं। दोनों ही हड़तालों में मज़दूरों ने अपनी फ़ौलादी एकजुटता और जुझारू संघर्ष के बल पर मालिकों को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया। जहाँ दोनों ही हड़तालों में पीस रेट में बढ़ोत्तरी की प्रमुख माँग पर मालिक झुके वहीं शक्तिनगर के मज़दूरों ने तो मालिकों को टूटी दिहाड़ियों का मुआवज़ा तक देने के लिए मजबूर कर दिया। लेकिन इस हड़ताल की सबसे बड़ी उपलब्धि इस बात में है कि इस हड़ताल ने मज़दूरों में बेहद लम्बे अन्तराल के बाद जुझारू एकजुटता क़ायम कर दी है। 1992 में पावरलूम कारख़ानों में हुई डेढ़ महीने तक चली लम्बी हड़ताल के बाद 18 वर्षों तक लुधियाना के पावरलूम मज़दूर संगठित नहीं हो पाये थे। इन अठारह वर्षों में लुधियाना के पावरलूम मज़दूर एक भयंकर क़िस्म की निराशा में डूबे हुए थे। मुनाफ़े की हवस में कारख़ानों के मालिक उनकी निर्मम लूट में लगे हुए थे। लेकिन किसी संगठित विरोध की कोई अहम गतिविधि दिखायी नहीं पड़ रही थी। लेकिन अब फिर से कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में उनके संगठित होने की नयी शुरुआत हुई है। यही मज़दूरों की सबसे बड़ी जीत भी है। यह आन्दोलन न सिर्फ़ पावरलूम मज़दूरों के लिए बल्कि लुधियाना के अन्य सभी कारख़ाना मज़दूरों के लिए एक नयी मिसाल क़ायम कर गया है।

शक्तिनगर में हुई हड़ताल के बाद गीता नगर के लगभग 50 कारख़ानों के मज़दूरों ने भी 6 सितम्बर से 1 अक्टूबर तक हड़ताल की और वे भी पीस रेट वेतन बढ़ोत्तरी हासिल करने में सफल रहे। इस हड़ताल का नेतृत्व माकपा से टूट कर बनी एक पार्टी सी.पी.एम. पंजाब के मज़दूर फ़्रण्ट सी.टी.यू. पंजाब के हाथ में था। इस हड़ताल के नेतृत्व के घोर अवसरवादी चरित्र के कारण लुधियाना के मज़दूर आन्दोलन को एक बार फिर बड़ा नुक़सान उठाना पड़ा। गीता नगर के पावरलूम मज़दूर साथियों की हड़ताल पर हम आगे अलग रपट प्रकाशित करेंगे।

लुधियाना के पावरलूम मज़दूरों की नारकीय जीवन परिस्थितियाँ

लुधियाना के पावरलूम कारख़ानों में मालिकों का बर्बर जंगल राज क़ायम है। इन कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूर कितनी भयंकर ज़िन्दगी जीने पर मजबूर होंगे इसका अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि पिछले 10-12 वर्षों से उनके वेतन में ज़रा सी भी बढ़ोत्तरी नहीं हुई है। बल्कि बहुत से मामलों में तो उनके पीस रेट घटा दिये गये हैं। दूसरी तरफ़ इन 10-12 वर्षों के दौरान मज़दूरों की बुनियादी ज़रूरतों की वस्तुओं की क़ीमतें आसमान छूने लगी हैं। इस दौरान आटे की क़ीमत लगभग दोगुनी हो चुकी है। मूँग-मसूर और अरहर की दाल ग़रीबों का रोज़मर्रा का भोजन माना जाता था, लेकिन अब ये भी मज़दूरों की पहुँच में नहीं हैं। खाना पकाने का तेल, सब्ज़ियाँ आदि सब चीज़ों की आसमान छू रही क़ीमतें मज़दूरों की कमर तोड़ रही हैं। फल ख़रीद सकने का तो मज़दूर सपना भी नहीं देख सकते। कमरों के किराये इन 10-12 वर्षों में लगभग चार गुना बढ़ चुके हैं। हर जगह की तरह शक्तिनगर के पावरलूम मज़दूरों को मालिक इतना ही देते हैं कि वे सिर्फ़ ज़िन्दा रह सकें। मज़दूरों को कारख़ाना मालिकों ने महज़ अपनी मशीनों के पुर्ज़े बना दिया है। ऐसा कोई भी पावरलूम मज़दूर नहीं है जो कम-से-कम 12 घण्टे काम न करता हो। 14-16 घण्टे काम करना तो बहुत साधारण-सी बात मानी जाती है। लेकिन इसके बावजूद भी कुछेक को छोड़कर सभी की मासिक कमाई 3500 से 5000 ही बन पाती है। वे न अच्छा खा सकते हैं, न अच्छा पहन सकते हैं, न अच्छी रिहायश प्राप्त कर सकते हैं, न दवा-इलाज करवा सकते हैं। मनोरंजन के लिए उनके पास न तो समय है न पैसा। वहीं शक्तिनगर के कारख़ाना मालिकों के मुनाफ़े दिन दूने-रात चौगुने बढ़े हैं। मालिकों ने शाल के कपड़े की क़ीमतें पहले से बहुत अधिक बढ़ा दी हैं। उनके बँगलों-गाड़ियों की संख्या बढ़ती जा रही है, वे अपने घरेलू जानवरों पर ही महीने में दसियों हज़ार ख़र्च कर देते हैं, पार्टियों-जश्नों में बेहिसाब धन उड़ा देते हैं। लेकिन मज़दूरों की आमदनी में वे एक पैसे की भी बढ़ोत्तरी करने को तैयार नहीं होते। ये बर्बर कारख़ाना मालिक मज़दूरों की सुरक्षा पर एक भी पैसा ख़र्च करने को तैयार नहीं। कारख़ानों में अक्सर भयंकर हादसे होते रहते हैं। शक्तिनगर के कारख़ाने मज़दूरों के साथ होने वाले हादसों के लिए मशहूर हैं। मशीनों में करण्ट आने से, ताने में लिपटने से अक्सर मज़दूर जानलेवा हादसों का शिकार होते रहते हैं। ई.एस.आई. कार्ड आदि की तो बात ही छोड़िये मालिक तो उन्हें पहचानपत्र तक बना कर देने को तैयार नहीं। इसीलिए वे हादसे होने पर मज़दूरों को मुआवज़ा देने की ज़िम्मेदारी से भी बच जाते हैं। मज़दूर के मरने पर भी वे दस-बीस हज़ार में बात निपटाने की कोशिश करते हैं। आठ घण्टे कार्यदिवस, हाज़िरी रजिस्टर, हाज़िरी कार्ड, पी.एफ़, छुट्टियाँ आदि सभी श्रम क़ानूनों की खुलेआम धज्जियाँ उड़ाने वाले इन मालिकों को किसी का डर नहीं। लेबर विभाग, पुलिस-प्रशासन सहित सारा सरकारी तन्त्र इनकी जेब में है। मालिकों द्वारा बेहद घृणित व्यवहार मज़दूरों को सहना पड़ता है। बात-बात पर गाली-गलौज, मार-पिटाई साधारण बात है।

पूरे लुधियाना में आम मज़दूर आबादी की यही स्थिति है। लेकिन इन मज़दूरों को संगठित करने की बजाय क्रान्तिकारी वाम का बड़ा हिस्सा स्वयं अवसरवादी हो धनी किसानों की माँगों को लेकर लड़ने में लगा हुआ है। इस विशालकाय मज़दूर आबादी को संशोधनवादी ट्रेडयूनियनों के भरोसे छोड़ दिया गया है। इन्हें न संगठित करने के लिए तरह-तरह के मज़ाक़िया बहाने दिये जाते हैं जैसे कि इन मज़दूरों का प्रवासी होना, इनकी स्थायी रिहायश न होना, आदि। लेकिन इस ज़िम्मेदारी से मुँह चुराने का वास्तविक कारण इस पुराने पड़ चुके वामपन्थी नेतृत्व की अवसरवादिता और उसकी पुरानी पड़ चुकी सोच में निहित है।

पावरलूम मज़दूरों में क्रान्तिकारी चेतना व संगठन के बीज बोये जाना, शक्तिनगर के मज़दूरों का बिखरा स्वत:स्फूर्त संघर्ष, का.म.यू. के नेतृत्व में संगठित हड़ताल का पहला दौर और शानदार जीत

जैसा कि हमने रिपोर्ट की शुरुआत में ही बताया कि लुधियाना के पावरलूम मज़दूर 1992 की पावरलूम मज़दूरों की हड़ताल की असफलता के बाद बेहद निराश हो गये थे। 18 वर्षों तक पावरलूम मज़दूर आबादी में एक भयंकर चुप्पी छाई थी। इन मज़दूरों को फिर से जगाना और संगठित करने के बेहद कठिन और चुनौतीपूर्ण काम को बिगुल ने 2008 के लगभग 5-6 महीनों से हाथ में लिया था। बिगुल मज़दूर दस्ता द्वारा मज़दूरों के बीच लगातार और गहन क्रान्तिकारी प्रचार-प्रसार किया गया। शक्तिनगर के इलाक़े में मज़दूरों की अच्छी-ख़ासी संख्या 'बिगुल' तथा अन्य क्रान्तिकारी साहित्य पढ़ने लगी। जुलाई 2008 में मुख्यत: बिगुल के साथ जुड़े लुधियाना के मज़दूरों को साथ लेकर कारख़ाना मज़दूर यूनियन का गठन किया गया था। जून में पप्पू नाम के एक मज़दूर की मशीन पर काम करते वक़्त करण्ट लगने से मौत हो जाने के बाद न्यू शक्तिनगर के इन मज़दूरों ने कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में अपने साथी की मौत के अफ़सोस में और कारख़ाना मालिक से उसके परिवार को उचित मुआवज़ा दिलाने के लिए एक दिन की हड़ताल की थी। इस एक दिन की हड़ताल के बाद मज़दूरों ने मालिकों को उनके पीस रेट में बढ़ोत्तरी करने की माँग करने का साहस दिखाना शुरू किया। पहले सभी कारख़ानों के मरोड़ी कारीगरों ने हड़ताल करके मालिकों से पीस रेट बढ़वाया, फिर ताना बाइण्डरों ने हड़ताल करके रेट बढ़वाया, फिर कुछ कारख़ानों के मशीन ऑपरेटरों ने रेट बढ़वा लिया। कुछ कारख़ानों में कोना बाइण्डरों के भी पीस रेट बढ़ गये थे। उनके बाद जब नलिया बाइण्डर हड़ताल पर बैठे तो मालिक ग़ुस्से से पागल हो उठे। नलिया बाइण्डर मज़दूरों की चल रही हड़ताल के दौरान ही यूनियन एक पर्चा छापकर बाँटने की तैयारी कर रही थी जिसमें मज़दूरों को इस तरह की बिखरी हड़तालों की बजाय सारे मज़दूरों की संगठित हड़ताल किये जाने का आह्वान किया जाना था। इससे पहले कि मज़दूरों के पास वह पर्चा पहुँचता मालिकों ने ख़ुद ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारते हुए सभी मज़दूरों की एकजुट हड़ताल का रास्ता साफ़ कर दिया। मज़दूरों की माँगों से ग़ुस्से से पागल हो उठे मालिकों ने मज़दूरों को सबक सिखाने के इरादे से, उनमें दहशत फैलाने के लिए 24 तारीख़ को ख़ुद ही कारख़ाने बन्द कर दिये। उन्होंने सोचा था कि उनके ऐसा करने से मज़दूर भविष्य में उनके सामने किसी प्रकार की कोई माँग रखने का साहस नहीं दिखायेंगे। उन्होंने पिछलें दिनों में मज़दूरों द्वारा बढ़वाये पीस रेट भी रद्द कर दिये और कहा कि अब जिसने काम करना है करो बाक़ी जाओ। मालिकों ने सोचा था कि मज़दूर उनके सामने हाथ जोड़ेंगे, उनके पैर पकड़ेंगे और पीस रेट बढ़ाने की माँग रखने का साहस दिखाने के लिए क्षमा माँगेंगे और 2-3 घण्टों में जब मज़दूर ज़मीन पर आ जायेंगे तो वे फिर काम शुरू कर लेंगे। लेकिन साहसी मज़दूरों ने उनकी सारी योजनाओं पर पानी फेर दिया। मज़दूरों ने मालिकों की ईंट का जवाब पत्थर से दिया। मज़दूरों ने तुरन्त कारख़ाना मज़दूर यूनियन से सम्पर्क किया और उन्हें रास्ता दिखाने को कहा। तुरन्त मज़दूरों की बड़ी मीटिंग बुलायी गयी। लगभग 400 मज़दूरों की इस मीटिंग में सर्वसम्मति से एलान किया गया कि जब तक सारे के सारे मज़दूरों के पीस रेट और जो मज़दूर वेतन पर काम करते हैं उनके वेतन नहीं बढ़ा दिये जाते तब तक शक्तिनगर में कोई कारख़ाना नहीं चलेगा। 25 अगस्त को नाममात्र संख्या को छोड़कर बाक़ी सारे मज़दूर हड़ताल पर थे।

मालिकों को अभी भी यह भ्रम था कि मज़दूर काम पर अपने आप लौट आयेंगे, लेकिन समय के साथ उनका भ्रम टूटता गया। हड़ताल और मज़बूत होती गयी। किसी-किसी कारख़ाने में जो थोड़ा-बहुत काम हो रहा था, वह भी बन्द होता चला गया। 42 कारख़ानों का काम पूरी तरह से ठप्प हो गया। 25 को श्रम विभाग पर ज़बर्दस्त रोष-प्रदर्शन करके पीस रेट बढ़ाने, कारख़ानों में मज़दूरों की सुरक्षा इन्तज़ामों सहित सभी श्रम क़ानून लागू करने के लिए ए.एल.सी. नेत्र सिंह धालीवाल को माँगपत्र सौंपा गया। 26 को मालिकों की एसोसिएशन सारे मालिकों की तरफ़ से बातचीत के लिए बैठने को तैयार हो गयी। यह उनकी मजबूरी थी, क्योंकि तेज़ी का सीज़न था और उन्हें हड़ताल से भारी नुक़सान उठाना पड़ रहा था। ताना मास्टरों और मरोड़ी वालों के रद्द किये बढ़े हुए रेट फिर से लागू करने, कोना बाइण्डरों और मशीन ऑपरेटरों के कुछेक कारख़ानों में बढ़े हुए रेट सारे कारख़ानों में लागू करवाने की माँगें तो उसी दिन मान कर मालिकों को अपना थूका चाटना पड़ा। नलियाँ बाइण्डरों का अठारह मशीनों तक 1000 रुपये और उससे ऊपर मशीनें होने पर 1000 रुपये की बढ़ोत्तरी के अलावा 55 रुपये प्रति मशीन बढ़ाने की माँग मानने पर मालिकों को उसी दिन मजबूर होना पड़ा। लेकिन मशीन ऑपरेटरों के पीस रेट में बढ़ोत्तरी की उस दिन कोई सहमति न बन पायी। जब 27 को दोपहर तक मालिकों ने कोई बातचीत न चलायी और श्रम अधिकारी टालमटोल करते रहे तो तुरन्त श्रम दफ़्तर पर पहुँचकर धरना दे दिया गया। मज़दूरों के ग़ुस्से से घबराकर सारे श्रम अधिकारी दफ़्तर छोड़कर भाग खड़े हुए। एलान किया गया कि अगर रविवार तक मज़दूरों की माँगें नहीं मान ली जातीं तो सोमवार को श्रम विभाग का घेराव किया जायेगा। शनिवार को चली बातचीत बेनतीजा रही। रविवार को लेबर इंस्पेक्टर मालिकों से बातचीत करने कारख़ानों के चक्कर लगाता रहा। सोमवार को हड़ताली मज़दूरों ने श्रम कार्यालय का घेराव कर दिया। मालिक श्रम विभाग में बातचीत के लिए नहीं आना चाहते थे। वे किसी होटल में बातचीत करने को कह रहे थे। यूनियन द्वारा किसी भी होटल में जाने से इंकार कर देने पर मालिक एक सार्वजनिक पार्क में बैठकर बातचीत करने के लिए तैयार हुए। लेकिन वे चलती बातचीत में ही उठकर भाग खड़े हुए। लेकिन श्रम अधिकारी घबराये हुए थे। उन्हें चेतावनी दी गयी थी कि अगला घेराव अनियमितकाल तक होगा और उनका बाथरूम जाना भी बन्द कर दिया जायेगा, और घेराव बिना किसी पूर्वसूचना के होगा। श्रम अधिकारियों ने मालिकों के प्रतिनिधियों को जैसे-तैसे फिर बुलाया और रात साढ़े नौ बजे तक बातचीत चलती रही। डीसी बार-बार ए.एल.सी. को फ़ोन करके स्थिति के बारे में पूछ रहा था। मशीन ऑपरेटरों के लिए बुलबुल, फ़ेदर जैसी कैटगिरी पर 7 प्रतिशत और कैसमोलोन, पीपी की कैटगिरी पर 11 प्रतिशत पीस रेट बढ़ोत्तरी पर सहमति बन गयी। लेकिन हड़ताल की टूटी हुई दिहाड़ियों के भुगतान पर बात फिर अटक गयी। 31 को श्रम विभाग सारा दिन भाग-दौड़ करता रहा। मालिकों ने पहले तो टूटी दिहाड़ियों का एक भी पैसा देने से इंकार कर दिया। फिर वे 200 रुपये बतौर मुआवज़ा देने को तैयार हुए, धीरे-धीरे करके जब वे 31 की शाम तक हड़ताल के मुआवज़े के तौर पर हर मज़दूर को 400 रुपये देने को राज़ी हो गये तो सभी मज़दूरों ने एकमत होकर जोशीले और गौरवशाली नारों के साथ हड़ताल की समाप्ति का ऐलान किया।

का.म.यू. के नेतृत्व में दूसरे व तीसरे दौर की हड़तालें

शक्तिनगर की शानदार हड़ताल और उसकी गौरवशाली जीत ने लुधियाना के बाक़ी इलाक़ों के

(पेज 9 पर जारी)

कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में १०० से भी अधिक पावरलूम कारख़ानों के मज़दूरों ने कायम की जुझारू एकजुटता

(पेज 8 से आगे)

पावरलूम मज़दूरों में बड़े स्तर पर नयी जागृति का संचार किया और उनमें भी संघर्ष के राह पर चलने का साहस पैदा किया। कारख़ाना मज़दूर यूनियन ने शक्तिनगर की हड़ताल के दौरान और समाप्ति के बाद पावरलूम मज़दूरों के बीच लगभग 60 हज़ार पर्चे बाँटे। मज़दूरों ने पर्चों का जोशो-ख़रोश के साथ स्वागत किया। शक्तिनगर की हड़ताल की समाप्ति के साथ अगले ही दिन 1 सितम्बर को पवन टेक्सटाइल, पुरानी माधोपुरी के मज़दूरों ने हड़ताल के साथ आन्दोलन के दूसरे दौर की शुरुआत होती है। चार दिन की हड़ताल के बाद मालिक को शक्तिनगर वाला सारा समझौता लागू करने के लिए झुकना पड़ा। इसी दौरान शक्तिनगर के कुछ कारख़ानों के मालिकों ने समझौता लागू करने से इंकार कर दिया। इन कारख़ानों में कुछ घण्टों से लेकर 2 दिन तक काम बन्द रहा। मालिकों को फिर झुकना पड़ा। 7 सितम्बर को जिन्दल टेक्सटाइल, गौशाला के मज़दूरों ने हड़ताल कर दी। यह ऐसा समय था जब यह तय हो चुका था कि गौशाला, कश्मीर नगर और माधोपुरी के मज़दूर हर हाल में हड़ताल करेंगे। यूनियन इस बात को समझती थी कि अगर वेतन मिलने से पहले मज़दूर हड़ताल करते हैं तो मज़दूरों का हड़ताल में अधिक दिन तक टिक पाना सम्भव न होगा। यूनियन मज़दूरों के बीच लगातार यह प्रचार चला रही थी कि तालमेल बिठाकर योजनाबद्ध ढंग से हड़ताल की जाये। जिन्दल टेक्सटाइल के मज़दूरों की हालाँकि यह ग़लती थी कि वे अपने आप ही बिना यूनियन से सलाह किये हड़ताल पर चले गये थे। लेकिन दूसरों से अलग पहले ही हड़ताल कर देने के नकारात्मक पहलू को सकारात्मक पहलू में बदल दिया गया। जिन्दल टेक्सटाइल के मज़दूरों को साथ लेकर गौशाला, माधोपुरी, कश्मीर नगर के सारे इलाक़े के मज़दूरों के साथ तालमेल बिठाकर एक बड़ी मीटिंग का आयोजन किया गया। इस मीटिंग के साथ इन इलाक़ों के मज़दूरों की सामूहिक और योजनाबद्ध हड़ताल की नींव रख दी गयी। मज़दूरों के साथ विचार-विमर्श के बाद यह एलान कर दिया गया कि जिस कारख़ाने के मालिक शक्तिनगर के समझौते को लागू करेंगे, वहाँ मज़दूर हड़ताल पर नहीं जायेंगे। इसके लिए 15 सितम्बर तक का समय मालिकों को दिया गया। सात कारख़ानों के मालिकों ने लिखित में इस बात को माना। 16 सितम्बर को गौशाला, माधोपुरी, कश्मीर नगर के 22 कारख़ानों के मज़दूरों की हड़ताल के साथ हड़तालों के तीसरे दौर की शुरुआत होती है। 17 सितम्बर को इन इलाक़ों के सहायक श्रम आयुक्त आर. के. गर्ग को 25 प्रतिशत पीस रेट बढ़ोत्तरी, कारख़ानों में मज़दूरों की सुरक्षा के इन्तज़ामों और सभी श्रम क़ानूनों को लागू करवाने सम्बन्धी माँगपत्र सौंपा गया। यहाँ के मालिक अधिक अड़ियल निकले। गौशाला इलाक़े के मालिक लुधियाना के सबसे पुराने मालिकों में से हैं। ये वही मालिक हैं जिन्होंने 1992 की हड़ताल को कामयाब नहीं होने दिया था। ये मालिक 30 सितम्बर को ही वार्ता के लिए आये। मालिकों का यह भ्रम था कि वे मज़दूरों को तोड़ लेंगे, बुरी तरह से टूटा। आये दिन नये-नये कारख़ानों के मज़दूर हड़ताल में शामिल होते गये। कई बार श्रम विभाग के चक्कर काटने के बाद वहाँ से यह आश्वासन मिला था कि 27 सितम्बर को मालिकों को हर हाल में वार्ता के लिए लाया जायेगा और समझौता करवाया जायेगा। मज़दूर रात के 9 बजे तक श्रम विभाग पर धरना लगाये बैठे रहे लेकिन कोई मालिक न आया। श्रम अधिकारी बेशर्मी भरी ड्रामेबाज़ी करते रहे। मालिकों को पूरा यक़ीन था कि उनका यह रवैया मज़दूरों के हौसले पस्त कर देगा। लेकिन अगले दिन (28 सितम्बर) उन आठ कारख़ानों के मज़दूर भी हड़ताल पर बैठ गये जहाँ पहले समझौता हो चुका था और एलान किया कि अब सभी का फ़ैसला इकट्ठा होगा। अब इस हड़ताल में 59 पावरलूम कारख़ानों के मज़दूर शामिल हो चुके थे। मज़दूरों की इस फौलादी एकजुटता ने मालिकों को बुरी तरह तोड़ दिया। 29 तारीख़ को गौशाला के वीर हक़ीक़त स्कूल के मैदान में मालिकों की बड़ी मीटिंग हुई। सारा मैदान भरा पड़ा था। मालिकों में बुरी तरह फूट पड़ चुकी थी। उनमें भयंकर झगड़ा हुआ। मार-पिटाई को छोड़कर सब हुआ। 30 तारीख़ को वार्ता के लिए 26 कारख़ानों के मालिक पहुँचे। उनकी लाचारी देखते बनती थी। लिखित में समझौता हुआ कि मशीन ऑपरेटरों के लिए कैसमोलोन और काटन की कैटगरी (पी.पी. बोरा, डाइड बोरा) पर 11 प्रतिशत और बुलबुल, फेदर, गलोरी की कैटगरी पर सात प्रतिशत की बढ़ोत्तरी होगी, नली बाइण्डरों के वेतन में 12 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी, कोना बाइण्डर के लिए प्रति पूड़ा एक रुपये की बढ़ोत्तरी, ताने वाले मज़दूरों को बुलबुल और पीपी पर 50 पैसे प्रति पूड़ा और कैसमोलोन कैटगिरी पर 1 रुपये प्रति पूड़ा बढ़ोत्तरी मिलेगी। इस तरह 30 की शाम सात बजे को सारे मज़दूरों द्वारा समझौते पर जोशीले नारों के साथ सहमति प्रगट किये जाने के बाद हड़ताल की समाप्ति हो गयी। इन हड़तालों में लुधियाना की दोनों मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्ज़ यूनियनों, मज़दूर चेतना विचार मंच जैसे संगठनों ने बिना किसी शर्त के सहयोग करते हुए अपना बिरादराना फ़र्ज़ पूरा किया।

कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में चली हड़तालों की अहम उपलब्धियाँ

जैसा कि हमने रिपोर्ट की शुरुआत में ही कहा है कि हड़ताल की सबसे बड़ी जीत तो इसी बात में थी कि भयंकर निराशा का शिकार अट्ठारह वर्षों से चुप बैठी लुधियाना की पावरलूम मज़दूर आबादी के संगठित होने की नयी शुरुआत हो गयी। शक्तिनगर के मज़दूरों ने एक जुझारू संगठन क़ायम कर लिया है। इस हड़ताल ने इन मज़दूरों को एक नया जीवन दिया है। वे एक नयी राह पर चल पड़े हैं। संगठन ही वह ताक़त है जिसके ज़रिये मज़दूर अपने अधिकारों के लिए लड़ सकते हैं। हालाँकि मज़दूरी में बढ़ोत्तरी उतनी नहीं हुई जितनी आशा थी लेकिन जो हासिल हुआ है वह अहम है। मज़दूरों की आमदनी लगभग 500 से 1300 रुपये तक बढ़ी है। लेकिन पैसे की बढ़ोत्तरी से कहीं अधिक बड़ी जीत संगठन बन जाने में है। उपलब्धियों को हमेशा पैसे में नहीं तोला जाता। मज़दूरों का संगठन ही है जिसकी बदौलत आज वे सिर उठाकर जी सकते हैं। संगठन ही मज़दूरों के आत्मसम्मान की रक्षा कर सकता है। जो मज़दूर कभी मालिक के सामने ऊँचे स्वर में बात नहीं कर सकते थे, जिन्हें इंसान का दर्जा नहीं दिया जाता था, उन्होंने एक होकर, संगठन बनाकर मालिकों के ख़िलाफ़ अपने हक़ की लड़ाई लड़ी है। संगठन ही वह औज़ार है जिसके ज़रिये मज़दूर आमदनी में बढ़ोत्तरी की रक्षा कर सकते हैं। संगठन के दम पर मज़दूर पुलिस सहित सारे सरकारी तन्त्र द्वारा मज़दूरों को दबाये जाने का मुक़ाबला कर सकते हैं, रिहायशी इलाक़े की सारी समस्याओं को हल करवा सकते हैं। इस संघर्ष में मज़दूरों में जो भाईचारा बना है उसके दम पर मज़दूर अपने विरोधी कारख़ाना मालिकों की मज़दूरों को बाँटकर रखने की चालों को नाकामयाब कर सकते हैं। जहाँ मज़दूरों में मज़बूत एकजुटता क़ायम हुई, वहीं मालिकों में बुरी तरह फूट पड़ गयी थी। जब भी मज़दूर मालिकों के ख़िलाफ़ संघर्ष का झण्डा उठाते हैं तो मालिक उनके संघर्ष को ख़त्म करने के लिए उनकी एकता तोड़ने के लिए, उन्हें सही राह से हटाने के लिए तरह-तरह की चालें चलते हैं। अगर मज़दूर जागृत न हो, नेतृत्व सावधान न हो तो मालिक अपनी चालों में कामयाब हो जाते हैं। इस हड़ताल की यह भी अहम प्राप्ति रही कि मालिक इससे इस तरह बौखला उठे कि उनके दिमाग़ों ने काम करना बन्द कर दिया और वे आपस में ही लड़ गये और अपने प्रधान को थप्पड़ तक मार दिये। दोनों ही हड़तालों में मज़दूरों के बीच में से संघर्ष कमेटी बनाकर हड़ताल को चलाया गया। क्या माँगें रखी जानी चाहिए, किन माँगों पर कहाँ तक समझौता करना चाहिए – सब मज़दूरों के साथ गहन विचार-विमर्श और सहमति के आधार पर तय किया जाता था और संघर्ष कमेटी के लोग ही मालिकों से वार्ता करते थे। मज़दूरों के लिए यह बात बिलकुल नयी थी। फ़ैसलों में आम मज़दूरों की भागीदारी की नीति को सफलतापूर्वक लागू किया जाना इन हड़तालों की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

ऐसे उदाहरण कम ही खोजे जा सकते हैं कि मज़दूरों को हड़ताल की टूटी दिहाड़ियों के एवज में भी कुछ मिला हो। कम-से-कम असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के लिए तो यह नामुमकिन-सा ही लगता था। लुधियाना में तो इस सम्बन्ध में समझौतापरस्त, दलाल, क़ायर सीटू के नेतृत्व में एवन साइकिल मैनेजमेण्ट से बेहद शर्मनाक समझौता करके मज़दूरों पर थोप देने का उदाहरण मिलता है, जब एवन के हड़ताली मज़दूरों को हड़ताल की सज़ा के तौर पर 9 दिनों तक मुफ़्त में काम करना पड़ा था।

ख़ैर, पहले एक साथ 42 कारख़ानों में, फिर 59 कारख़ानों में हड़ताल और मालिकों को झुका लेना भी इस हड़ताल की अहम उपलब्धि है। असल में इन छोटे-छोटे कारख़ानों के मज़दूरों को इसी ढंग से संगठित किया जा सकता है। जो श्रम अधिकारी मज़दूरों की बात तक सुनने को तैयार नहीं होते थे, जो सप्ताह में दो दिन छुट्टी करके आराम फरमाते थे, इस हड़ताल ने उन्हें मज़दूरों के लिए छुट्टी वाले दिनों में भी काम करने पर मजबूर किया। 30 अगस्त (सोमवार) को ए.एल.सी. एन.एस. धारीवाल और उनका स्टाफ़ रात साढ़े दस बजे तक बैठा रहा। 27 सितम्बर को भी सहायक लेबर कमिशनर आर.के. गर्ग और उनके स्टाफ़ को रात नौ बजे तक काम करना पड़ा। इन हड़तालों के ज़रिये न सिर्फ़ हड़ताल में शामिल मज़दूरों की आमदनी में बढ़ोत्तरी हुई है बल्कि जिन इलाक़ों में अभी हड़ताल नहीं फैली थी वहाँ भी मज़दूरों ने मालिकों से पीट रेट-वेतन बढ़वा लिया।

संघर्ष के कुछ नकारात्मक पहलू और आगे की चुनौतियाँ

जहाँ इस संघर्ष को महत्त्वपूर्ण सफलताएँ हासिल हुई हैं, वहीं कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं। आगे की गम्भीर चुनौतियों को देखते हुए नकारात्मक पहलुओं को रेखांकित करते हूए उन्हें दूर किया जाना ज़रूरी है। फ़ौरी तौर पर सबसे बड़ी चुनौती यह है कि हासिल हुई जीत की रक्षा करनी है। मालिक कभी भी मज़दूरों की मानी हुई माँगों को पूरी तरह लागू करने के लिए तैयार नहीं होते। जितना जीत हासिल करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है, उतना ही जीत की रक्षा के लिए लड़ना होता है। समझौते को लागू करवाने के लिए जी-जान लगा देनी पड़ेगी। इसमें सबसे बड़ी रुकावट तो यह है कि मज़दूरों में अभी पर्याप्त चेतना नहीं है। शक्तिनगर और उससे भी अधिक गौशाला, कश्मीर नगर व माधोपुरी की हड़ताल में देखा गया कि मज़दूरों की काफ़ी बड़ी संख्या हड़ताल करके घर बैठ गयी। वे रोज़ाना की मीटिंगों, धरने-प्रदर्शनों, जुलूसों में शामिल होना बेकार की बात समझते थे। उनका व्यवहार ऐसा था जैसे हड़ताल न की हो बल्कि मालिक से रूठ गये हों। मीटिंगों में आने वाले मज़दूरों में भी यह बड़ी समस्या थी कि मंच पर चल रही बातों पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते थे। ये चीज़ें सामूहिक विचार-विमर्श और एकमत बनने में रुकावट बनती रहीं। मज़दूर जब संगठन को अनदेखा कर स्वयंस्फूर्त ढंग से बिना कोई सलाह-मशविरा किये, बिना योजना बनाये हड़ताल करते हैं तो स्थिति पेचीदा बन जाती है। इस स्वयंस्फूर्तता को सचेतनता के पहलू से जोड़े जाने की आवश्यकता होती है वरना बड़ी लड़ाइयों में मालिकों को शिकस्त दे पाना मुश्किल हो जाता है।

पूँजीपति वर्ग हर जायज़ जनसंघर्ष पर आतंकवाद की साज़िश होने का दोष लगाता है। यहाँ भी ये कोशिशें शुरू हो चुकी हैं। हज़ारों मज़दूरों के इस जनान्दोलन को "माओवादी" आतंकवादियों की साज़िश बताकर दमन करने की साज़िशें बन रही हैं। सरकार, पुलिस-प्रशासन व मालिक तो हमेशा यह कहते ही हैं, लेकिन उनका साथ देने वाले कुछ नक़ली लाल झण्डे वाले भी हैं। सीटीयू (पंजाब) के नेता गीता नगर के पावरलूम मज़दूरों की मीटिंगों, धरना-प्रदर्शनों के मंचों से

(पेज 3 पर जारी)

इराक़ी जनता को तबाह करने के बाद अब इराक़ से वापसी का अमेरिकी ड्रामा

पिछले सात वर्षों तक इराक़ी जनता को अपने बमों और हथियारों का निशाना बनाने और उनकी सम्प्रभुता, स्वतन्त्रता और जीवन को बरबाद करने के बाद अमेरिका ने इराक़ में अपने "मिशन" के पूरा होने की घोषणा की। ज्ञात हो, कि अमेरिका ने सात वर्ष पहले जनसंहार के हथियारों के इराक़ के पास होने के नाम पर और इराक़ी शासक सद्दाम हुसैन की तानाशाही को ख़त्म कर "लोकतन्त्र" की स्थापना करने के नाम पर इराक़ पर हमला बोल दिया था। आज सारी दुनिया जानती है कि इराक़ में अमेरिका को जनसंहार के कोई हथियार नहीं मिले। अमेरिका स्वयं भी इस तथ्य को मान चुका है। हमले के पीछे बताये गये दूसरे कारण की पोल भी खुल चुकी है। अमेरिका ने लोकतन्त्र की स्थापना के नाम पर इराक़ पर साम्राज्यवादी क़ब्ज़ा किये रखा और सैन्य ताक़त के एक बड़े हिस्से को वापस बुलाने के बावजूद इराक़ के प्राकृतिक संसाधनों, ख़ास तौर पर, इराक़ी तेल पर उसका क़ब्ज़ा अभी भी बरक़रार है और लम्बे समय तक रहेगा। सैन्य क़ब्ज़े को हल्का करने के पीछे भी अमेरिका की कोई भलमनसाहत नहीं है, बल्कि इराक़ी प्रतिरोध योद्धाओं का वीरतापूर्ण संघर्ष है जिसने अमेरिका को मजबूर कर दिया कि वह अपने प्रत्यक्ष और पूर्ण क़ब्ज़े को अप्रत्यक्ष और आंशिक क़ब्ज़े में तब्दील कर दे। लेकिन 31 अगस्त को बराक ओबामा द्वारा की गयी अमेरिकी सेना की वापसी की सच्चाई पर ग़ौर करें तो हम क्या तस्वीर देखते हैं?? ओबामा ने 31 अगस्त को अपने ओवल कार्यालय से घोषणा की कि 'ऑपरेशन इराक़ी फ़्रीडम' पूर्ण हो चुका है! अब इराक़ी जनता अपने देश में स्वयं शासन और सुरक्षा सँभालेगी और अमेरिका उसमें "सुझाव" और "सहायता" देगा। आइये देखें कि इस "सुझाव" और "सहायता" का क्या अर्थ है।

ओबामा के तमाम एलानों के बावजूद सच्चाई यह है कि 50 हज़ार से ज़्यादा अमेरिकी सैनिक इस समय भी इराक़ में हैं और अभी काफ़ी समय तक मौजूद रहेंगे। ये सैनिक इराक़ के बड़े और प्रमुख शहरों में स्थित पाँच विशालकाय सैन्य अड्डों में रहेंगे। बग़दाद में अमेरिका का दूतावास एक महाविशाल क़िले के समान दिखता है। एक अमेरिकी सैन्य अधिकारी ने ओबामा की घोषणा के ही समय पूरी नंगई के साथ एलान किया कि अन्तरिक्ष से पृथ्वी की आदमी द्वारा बनायी गयी जिन इमारतों को देखा जा सकता है उनमें से बग़दाद में अमेरिकी दूतावास एक है। इस दूतावास की सुरक्षा में 24 ब्लैक हॉक हेलीकॉप्टर और 50 बमरोधी वाहन और हज़ारों अमेरिकी और इराक़ी सैनिक 24 घण्टे लगे रहते हैं।

ओबामा ने अपने भाषण में कहा कि जो अमेरिकी सैनिक अभी भी इराक़ में हैं, वे इराक़ी बलों को "सुझाव और सहायता" देने के लिए हैं। लेकिन एक हफ़्ता भी नहीं बीता था कि अमेरिकी सैनिकों ने इराक़ी विद्रोहियों पर हमला किया और उसके बाद भी इराक़ी जनता के प्रतिरोध को कुचलने की हर सम्भव कोशिश अमेरिकी सैन्य शक्ति इराक़ में कर रही है। दरअसल, इराक़ में मौजूद अमेरिकी सैनिकों में से 4,500 सीधे-सीधे सैन्य कार्रवाइयों में हिस्सा लेने के लिए हैं। ग़ौरतलब है कि ओबामा की घोषणा के कुछ ही दिनों बाद इराक़ में अमेरिकी सेना के प्रवक्ता ने कहा कि श्रीमान राष्ट्रपति की घोषणा चाहे जो भी हो, इराक़ में व्यावहारिक तौर पर बहुत कुछ बदलने नहीं जा रहा है। यानी, अमेरिकी सेना के बर्बर इराक़ी जनता की उसी तरह हत्या करते रहेंगे, उसी तरह उन्हें यातना देते रहेंगे और उसी तरह उनकी अस्मिता को अपने बूटों तले कुचलते रहेंगे।

सारी दुनिया जानती है कि इराक़ की समस्या अमेरिकी साम्राज्यवाद की नाक का फोड़ा बन चुकी थी। इसलिए यह भी सभी जानते हैं कि "मानवतावादी" अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने इराक़ से बड़ी संख्या में अमेरिकी सेना की वापसी किसी मानवतावाद के कारण नहीं की है। एक कारण तो यह था कि इराक़ युद्ध अमेरिकी जनता के बीच बेहद अलोकप्रिय हो चुका था और ओबामा के सत्ता में आने और बुश के हारने का एक कारण इराक़ और अफ़गानिस्तान में अमेरिका का विनाशकारी उलझाव भी था। दरअसल सत्ता में आने से पहले ओबामा ने ख़ुद कहा था कि इराक़ युद्ध "मूर्खतापूर्ण" है। लेकिन ज़रा सुनिये कि उन्होंने 31 अगस्त को क्या कहा! ओबामा ने कहा कि वियतनाम और इराक़ में अमेरिका ने जनता को मुक्त करने के लिए वीरतापूर्ण युद्ध किया। यह नायकत्वपूर्ण युद्ध था और अमेरिकी सैनिकों ने इसमें शानदार बहादुरी का प्रदर्शन किया! अब ऐसी कलाबाज़ी पर तो हुनरमन्द से हुनरमन्द नट भी बग़लें झाँकने लगेगा! वास्तव में इराक़ युद्ध अमेरिका के लिए बेहद ख़र्चीला भी साबित हो रहा था और अमेरिकी वित्तीय संकट के तात्कालिक कारणों में से एक इराक़ युद्ध भी था, हालाँकि लम्बी दूरी में ऐसे सभी युद्ध साम्राज्यवाद को अपने आर्थिक संकट से निपटने में मदद करते हैं। भूमण्डलीकरण की वकालत करने वाले जोसेफ़ स्टिग्लिट्ज़ तक ने कहा कि इराक़ युद्ध की लागत 3 ट्रिलियन डॉलर से भी अधिक हो चुकी है। इराक़ युद्ध के कारण 2003 में 140 डॉलर प्रति बैरल बिकने वाला कच्चा तेल अब 400 डॉलर प्रति बैरल से भी अधिक क़ीमत पर बिक रहा है, जिसकी क़ीमत सारी दुनिया की ग़रीब जनता चुका रही है। इन सभी कारकों का अमेरिकी अर्थव्यवस्था की सेहत पर बहुत बुरा असर पड़ रहा है। मन्दी दूर होने का नाम नहीं ले रही है और अमेरिका में बेरोज़गारी नये कीर्तिमान बना रही है। बेघर लोगों की संख्या अमेरिका में 1930 के दशक के क़रीब पहुँच रही है। सभी "कल्याणकारी" क़दम बेकार साबित हो रहे हैं और जनता में ओबामा के प्रति असन्तोष बढ़ रहा है। आज अमेरिकी सत्ता 1960 के दशक में हो रहे विशाल जनप्रदर्शनों जैसे जनप्रदर्शनों की साक्षी बन रही है और शासक वर्ग बेहद चिन्ता में है। 2006 से जारी आर्थिक संकट ने अमेरिकी पूँजीवाद को बुरी हालत में पहुँचा रखा है।

लेकिन आर्थिक संकट से बड़ा तात्कालिक कारण यह था कि इराक़ युद्ध में अभी तक क़रीब 6,000 अमेरिकी सैनिक मारे जा चुके हैं; हज़ारों विकलांग हो चुके हैं; मानसिक रूप से बीमार हो चुके सिपाहियों की कोई गिनती नहीं है; इराक़ से वापस आने वाले क़रीब 300 सिपाही आत्महत्या कर चुके हैं। ये सारे कारक अमेरिकी सत्ता पर भयंकर दबाव बना रहे थे। इराक़ युद्ध में उनका जीतना सम्भव नहीं था, यह बात अमेरिकी शासकों की समझ में आ चुकी थी। याद करें कि अमेरिका ने इराक़ पर हमले के समय कहा था कि वह मध्य-पूर्व का नक्शा बदल देगा। इसका अर्थ क्या था – यह भूतपूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिण्टन के एक बयान से आप समझ सकते हैं। क्लिण्टन में हाल ही में बताया कि अमेरिका की योजना इराक़ पर क़ब्ज़े के बाद सीरिया और ईरान में सत्ता परिवर्तन की थी, ताकि मध्य-पूर्व पर हर प्रकार का आर्थिक और राजनीतिक नियन्त्रण स्थापित किया जाये। लेकिन इराक़ में ही अमेरिका के लिए जीना मुश्किल हो गया और उसे एक तरह से वहाँ से भागना पड़ रहा है। लेकिन इसके पहले वह हर तरह से सुनिश्चित कर लेना चाहता है कि इराक़ में उसके साम्राज्यवादी आर्थिक हित सुरक्षित रहें। इसलिए वह अपने किसी पसन्दीदा शासक को गद्दी पर बिठाने की कोशिश में लगा हुआ है। लेकिन आख़िरी चुनावों में लटकी हुई संसद अस्तित्व में आयी और लम्बे इन्तज़ार के बावजूद अभी तक इस राजनीतिक संकट का कोई हल नहीं निकल सका है। लोग यह भी कयास लगाने लगे हैं कि कोई हल न निकलने की सूरत में अमेरिकी शह पर सेना तख़्तापलट कर सकती है और एक सैन्य तानाशाही अस्तित्व में आ सकती है।

अचरज की बात नहीं थी कि ओबामा ने अपने भाषण में अप्रत्यक्ष रूप से बुश की प्रशंसा भी की और कहा कि बुश द्वारा इराक़ में किये गये "सैन्य उभार" ने इराक़ी प्रतिरोध को कम किया और इराक़ को स्थिर किया। लेकिन यह किस प्रकार हुआ यह देखना दिलचस्प होगा। इराक़ युद्ध के बाद पुनर्निर्माण के नाम पर करोड़ों डॉलर के ठेके अमेरिकी कम्पनियों को दिये गये जिसमें डिक चेनी की कम्पनी भी शामिल थी, जो कि बुश का सहयोगी और उपराष्ट्रपति था। इसके अलावा, इराक़ की तेल सम्पदा की अमेरिकियों ने ज़बर्दस्त लूट मचायी। अमेरिका अभी भी क़रीब 8.7 अरब डॉलर के इराक़ी तेल का कोई हिसाब नहीं दे पाया है। यह अमेरिका के लोकतन्त्र की स्थापना का अपना 'स्टाइल' है! और अमेरिका दुनिया के हर ऐसे देश में अमेरिकी स्टाइल "लोकतन्त्र" की स्थापना कर देना चाहता है जिसकी सत्ता उसके साम्राज्यवादी मंसूबों के विपरीत आचरण करती है। इस लोकतन्त्र का क्या अर्थ होता है यह आज के इराक़ और अफ़गानिस्तान में देखा जा सकता है! ओबामा को जो लोग बुश से बेहतर मानते थे, उन्हें ओबामा का 31 अगस्त का ओवल कार्यालय से दिया गया भाषण अवश्य पढ़ना चाहिए।

इसमें भी आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि ओबामा ने अपने भाषण में एक जगह भी इराक़ियों के दुख-दर्द के बारे में कुछ नहीं कहा। इसके लिए इराक़ियों से कभी माफ़ी नहीं माँगी गयी कि इराक़ी जनता के 10 लाख से भी अधिक लोगों की इस साम्राज्यवादी युद्ध में हत्या कर दी गयी; इराक़ की पूरी अवसंरचना को नष्ट कर दिया गया; इराक़ी अर्थव्यवस्था की कमर टूट गयी, जो वास्तव में दुनिया की सबसे समृद्ध अर्थव्यवस्थाओं में से हुआ करती थी; आज इराक़ के बड़े हिस्सों में बिजली और पीने का पानी तक मयस्सर नहीं है; बेरोज़गारी आसमान छू रही है और जनता के पास शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाएँ भी नहीं हैं। आज के इराक़ को देखकर कोई अन्धा भी बता सकता है कि सद्दाम हुसैन जैसे सर्वसत्तावादी शासक के शासन के तहत वह कहीं बेहतर स्थिति में था।

सद्दाम हुसैन निश्चित रूप से एक तानाशाह था और उसके शासन में कुर्दों, शियाओं और कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ताक़तों पर अकथनीय अत्याचार किये गये। लेकिन कौन इस बात को भूल सकता है कि यह वह दौर था जब सद्दाम हुसैन ईरान के ख़िलाफ़ अमेरिका का मित्र हुआ करता था? कौन भूल सकता है कि ईरान के साथ दस वर्ष के युद्ध के दौरान इराक़ को हथियारों की आपूर्ति अमेरिका से हो रही थी? कौन भूल सकता है कि कुर्दों और शियाओं पर सद्दाम के आदेश पर चलने वाली गोलियाँ वास्तव में अमेरिकी थीं? उस समय भी सद्दाम हुसैन अमेरिका के दोस्त थे। यह सच है सद्दाम हुसैन की बाथ पार्टी ने इराक़ में धार्मिक कट्टरपन्थ पर हमला किया, इराक़ का आधुनिकीकरण किया और कई अन्य प्रगतिशील कार्य किये। लेकिन सद्दाम ने जो कुछ भी प्रगतिशील किया उसमें कुछ भी अमेरिकी नहीं था, और जो कुछ भी तानाशाहीपूर्ण किया उसमें लगभग सबकुछ अमेरिकी था। सद्दाम हुसैन के शासन के तहत कम से कम इराक़ियों को राशनिंग व्यवस्था के ज़रिये बुनियादी खाद्य सामग्री; सुलभ उपलब्ध शिक्षा और चिकित्सा; बिजली और पानी उपलब्ध था। स्त्रियाँ बाथ पार्टी के शासन को सबसे अधिक याद करती हैं क्योंकि इस दौरान उन्हें हर वह अधिकार प्राप्त था जो पश्चिम में महिलाओं को हासिल हैं। अमेरिकी क़ब्ज़े के बाद साम्राज्यवाद की कठपुतलियों ने स्त्रियों को इस्लामी शासन के अधीन कर दिया है। 1996 में सामान्य इराक़ी जीवन प्रत्याशा 71 वर्ष थी जो 2007 में घटकर 67 वर्ष रह गयी; अन्तरराष्ट्रीय एजेंसियों के अनुसार क़रीब 5 लाख इराक़ी बच्चे युद्ध से सदमे में हैं; युद्ध शुरू होने के बाद क़रीब 40 लाख इराक़ी विस्थापित हो चुके हैं जिसमें से क़रीब आधे इराक़ छोड़ने को मजबूर हो गये हैं; इराक़ पर अमेरिकी क़ब्ज़े के दौरान सुन्नियों, शियाओं और कुर्दों के बीच टकराव लगातार बढ़ता गया है और धार्मिक कट्टरपन्थ में तीव्र बढ़ोत्तरी हुई है; हर महीने औसतन 300 इराक़ी मारे जाते हैं।

इराक़ी मज़दूर वर्ग विशेष रूप से भयंकर बदहाली का जीवन जी रहा है और उस जीवन पर भी हर समय मिसाइलों और बमों का साया होता है। अमीर वर्ग तो अपनी सुरक्षा ख़रीदने के लिए कुछ क़दम उठा भी सकते हैं, लेकिन आम ग़रीब इराक़ी जनता के लिए यह सम्भव नहीं है। अमीरों के एक विचारणीय हिस्से ने समझौतापरस्ती भी की है। प्रतिरोध योद्धाओं की मिलिशिया में भी बड़ी संख्या में निम्न मध्यवर्ग के इराक़ी नौजवान और ग़रीब मेहनतकश इराक़ी शामिल हैं। ज़ाहिर है कि किसी प्रगतिशील नेतृत्व की ग़ैर-मौजूदगी में इनका एक हिस्सा धार्मिक कट्टरपन्थ की ओर भी जा रहा है। लेकिन अमेरिकी साम्राज्यवादी क़ब्ज़े का एक प्रतिशत भी बाक़ी रहते जनता के लिए सबसे अहम अमेरिकियों को खदेड़ना और अपनी अस्मिता की रक्षा है। इसलिए आज जो ताक़त भी अमेरिकियों के ख़िलाफ़ लड़ने में नेतृत्व देने की कूव्वत रखती है, जनता उसके साथ खड़ी है।

यह साम्राज्यवादी अन्धेरगर्दी, लफ़्फ़ाज़ी और बेशर्मी की इन्तहाँ है कि अमेरिका का राष्ट्रपति मंच से बोलता है कि इराक़ी जनता को मुक्त कर दिया गया है और वहाँ लोकतन्त्र की बहाली कर दी गयी है। यह अपना गन्दा और घायल चेहरा छिपाने के लिए दिया गया कथन मालूम पड़ता है। इराक़ी जनता ने भारी क़ुर्बानियों के बावजूद साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक नायकत्वपूर्ण संघर्ष किया और अमेरिकी सैन्य गुण्डागर्दी के सामने घुटने नहीं टेके। और अन्ततः उन्होंने अमेरिकियों को अपने नापाक़ इरादे पूरे किये बग़ैर अपने देश से भगाने में सफलता हासिल करनी भी शुरू कर दी है। यह सच है कि इस थोपे गये साम्राज्यवादी युद्ध ने इराक़ को तबाह करके रख दिया है। इराक़ आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से बिखरी हुई स्थिति में है और अतीत में कई वर्ष पीछे चला गया है। लेकिन इराक़ी जनता ने यह साबित कर दिया है कि साम्राज्यवादी शक्ति के समक्ष कोई क्रान्तिकारी विकल्प न होने की सूरत में अगर जनता जीत नहीं सकती तो वह साम्राज्यवादी शक्तियों से हार भी नहीं मानती है। लेकिन साथ में इसका नकारात्मक सबक़ यह भी है कि आज साम्राज्यवादी हमले और क़ब्ज़े को उखाड़ फेंकने और उसे हरा देने की ताक़त मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट शक्तियों के नेतृत्व में ही हो सकता है।

इराक़ के मुक़ाबले कहीं पिछड़े वियतनाम ने कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में अमेरिका द्वारा बर्बरतम नरसंहारों के बावजूद घुटने नहीं टेके और अन्ततः अमेरिका लुट-पिटकर वियतनाम से जान बचाकर भागा और आज तक वियतनाम का नाम अमेरिकी सत्ताधारियों के दिल में एक बुरा स्वाद और ख़्याल छोड़ जाता है। यही हाल अमेरिका का कोरिया के युद्ध में भी हुआ था। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय फ़ासीवादी साम्राज्यवादी ताक़तों को भी समाजवादी सोवियत संघ ने हराया था। क्या विश्व इतिहास इस बात के पर्याप्त प्रमाण नहीं देता कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध विजयी प्रतिरोध हमेशा मज़दूरों की संगठित ताक़त ने किया है? आज भी अगर दुनिया भर की आम मेहनतकश जनता को साम्राज्यवाद की लूट के जुए से मुक्ति पानी है तो उसे अपने देश में समाजवाद के लिए संघर्ष करना होगा।

● शिशिर

एक ही रास्ता – मज़दूर इंक़लाब! मज़दूर सत्ता!

(पेज 1 से आगे)

नियम से हर साल सरकार को एक बार अनाज सड़ने के लिए डाँट देता है। ऐसा वह सिर्फ़ इसलिए करता है कि पूँजीवादी न्यायपालिका पर जनता का भरोसा क़ायम रहे। कम-से-कम एक ऐसा धड़ा होना चाहिए इस व्यवस्था का, जो इस व्यवस्था पर से जनता का विश्वास उठने को रोकने का काम कर सके। उसे साफ़-सुथरा होना चाहिए और अच्छी बातें करनी चाहिए। न्यायपालिका का पूँजीवादी व्यवस्था में यह एक कार्य होता है। हालाँकि साफ़-सुथरी तो अब वह भी नहीं दिखती है!

तो इस बार भी न्यायपालिका ने पूँजीवादी व्यवस्था की इज़्ज़त बचाने के इरादे से एक जनवादी अधिकारों को समर्पित संगठन सी.एल. की अधिकारों को समर्पित संगठन सी.एल. की याचिका पर सुनवाई करते हुए सरकार को गोदामों में अतिरिक्त पड़े अनाज को ग़रीबों में बाँट देने का आदेश दिया। लेकिन इस बार आर्थिक और राजनीतिक संकट में घिरी मनमोहन सिंह की सरकार ने पलटकर न्यायपालिका को ही झिड़क दिया और उसके सम्मान की धज्जियाँ उड़ा दी। अर्थशास्त्री प्रधानमन्त्री ने साफ़ कह दिया कि ग़रीबों में अनाज नहीं बाँटा जा सकता, क्योंकि इससे धनी किसान तबाह हो जायेंगे और उन्हें उत्पादन की प्रेरणा नहीं मिलेगी; इससे बाज़ार का सारा तन्त्र लड़खड़ा जायेगा और तमाम कम्पनियाँ जो खाद्यान्न के उत्पादन या संसाधन में लगी हुई हैं मुँह के बल आ गिरेंगी। न्यायपालिका को शरीफ़ माने जाने वाले प्रधानमन्त्री ने अपनी हद में रहने की सलाह दी और कहा कि सरकार के कामकाज में न्यायपालिका हस्पक्षेप न करे। संसदीय वामपन्थी और मज़दूर वर्ग की ग़द्दार पार्टी भाकपा के डी. राजा ने भी मनमोहन के सुर में सुर मिला दिया और कहा कि न्यायपालिका अपनी सीमा न लाँघे। थोड़ा और गरम क़िस्म का संसदवाद करने वाले ग़द्दार माकपा ने अनाज सड़ने पर चिन्ता जतायी और सरकार को सलाह दी कि पूँजीवादी व्यवस्था के राज़ इस तरह न खोले! उनके अर्थशास्त्रियों ने अचानक सारे अख़बारों में कॉलम लिखते हुए सलाहों और सुझावों की झड़ी लगा दी, जिसका मर्म यह था कि अगर थोड़ा-सा अनाज नहीं बाँटोगे और सर्वोच्च न्यायालय पर ही चिड़चिड़ाओगे तो व्यवस्था को संकट में डाल दोगे। इसलिए हे पूँजीवादी अर्थशास्त्री मनमोहन! हमारे "मार्क्सवादी" अर्थशास्त्र का थोड़ा लाभ उठाओ! कल्याण करो!!

लेकिन मनमोहन सिंह पूँजीवादी अर्थशास्त्र के नियमों को अच्छी तरह जानते हैं और उन्होंने उसे पूरी ईमानदारी से रख दिया, बिल्कुल नंगे शब्दों में – मेहनतकश जनता भूख और कुपोषण से मरती है, तो मरती रहे! उसके लिए अनाज बाँटकर पूँजीपतियों के मुनाफ़े पर कुल्हाड़ी नहीं चलायी जा सकती! क्यों? क्योंकि यह सरकार और व्यवस्था उन्हीं की है!!

दूसरी घटना – दूसरी घटना लगभग उसी समय घटित हो रही थी, जब सर्वोच्च न्यायालय और सरकार के बीच का यह संवाद चल रहा था। देश के सांसदों ने हड़ताल कर दी! जी हाँ! चौंकिये मत! अपने वेतन को बढ़ाने की माँग लेकर देश के सांसदों ने संसद का कामकाज ठप्प कर दिया। बड़ी नौटंकी की। नक़ली सरकार का ड्रामा किया। सरकार के ख़िलाफ़ सांसदों ने वेतन बढ़ाने की माँग को लेकर विरोध-प्रदर्शन किया। लेकिन सबकुछ कितना भाईचारे के साथ हुआ! एक अजीब-सा याराना पूरे माहौल पर पसरा हुआ था। विपक्ष के सांसद सरकार के सामने बच्चों की तरह ठुनक-ठुनककर वेतन बढ़ाने की माँग कर रहे थे। उनका कहना था कि केन्द्रीय सरकार के सबसे बड़े नौकरशाह से सांसद का वेतन कम-से-कम एक रुपया ज़्यादा होना चाहिए – यानी, 80,001 रुपये! काफ़ी नौटंकी के बाद सरकार ने इस ज़िद को आंशिक तौर पर मान लिया और सांसदों का वेतन बढ़ाकर 65,000 रुपये कर दिया गया। ज्ञात हो कि एक सांसद को कई हवाई यात्राएँ, चिकित्सा, लाखों फ़ोन कॉल, शिक्षा आदि की सुविधा निशुल्क मिलती है। उन्हें मामूली से आवास किराये पर सरकारी बँगला मिलता है, कई नौकर-चाकर मिलते हैं, सरकारी गाड़ी मिलती है, और ऐसी सुविधाओं की पूरी फ़ेहरिस्त से हम यह पूरा अंक भर सकते हैं। लेकिन उसकी कोई ज़रूरत नहीं है। मुद्दे की बात यह है कि इन सांसदों का कोई ख़र्च नहीं होता। सबकुछ जनता के पैसे पर इन्हें मिलता है, यानी सरकारी ख़ज़ाना इनकी हर ऐयाशी की क़ीमत उठाता है। इसके अलावा हर सांसद के पास अपने क्षेत्र के विकास के लिए करोड़ों रुपये आते हैं। ये पैसे भी कहाँ जाते हैं, यह देश का हर आम आदमी अच्छी तरह से जानता है। विदेशी बैंकों में इन सांसदों के करोड़ों रुपये यूँ ही जमा नहीं हैं! ये तो इनकी गाढ़ी मेहनत की कमाई है – जो मेहनत इन्होंने जनता की सम्पदा को चुरा-चुराकर इकट्ठा करने में लगायी है। इस सारी काली और सफ़ेद कमाई को जोड़ दिया जाये तो एक सांसद अपनी सातों पुश्तों का जीवन सुरक्षित कर देता है। इसके बाद भी एक ऐसे देश में जिसकी जनता का 77 फ़ीसदी हिस्सा 20 रुपये प्रतिदिन या उससे कम की आय पर जीता हो, ये सांसद अपनी शुद्ध मासिक आय को 80,000 रुपये करने के लिए अड़े हुए थे! यह सबकुछ उस देश में हो रहा है जिसकी 70 फ़ीसदी आबादी बस मुश्किल से एक वक़्त खाना खा पाती है। और दूसरी तरफ़ ये पूँजीवादी नेता पूँजीपति वर्ग की सेवा करने की अपनी फ़ीस को बढ़ाने के लिए विरोध की नौटंकी कर रहे हैं। ज़ाहिर है सांसदों के बढ़े हुए वेतन की क़ीमत भी करों की सूरत में इस देश की मेहनतकश जनता से ही वसूल की जायेगी। एक तरफ़ इस देश के 59 करोड़ मज़दूर तय न्यूनतम मज़दूरी तक नहीं पा रहे हैं या भुखमरी स्तर पर जीने लायक खेत मज़दूरी पर खट रहे हैं और महँगाई के क़हर से दम तोड़ रहे हैं और दूसरी तरफ़ देश के तथाकथित जनप्रतिनिधि और जनसेवक अपनी ऐयाशी को नयी ऊँचाइयों तक पहुँचाने में लगे हुए हैं। वास्तव में ये सांसद पिछले 63 वर्षों के दौरान देश के पूँजीपतियों के तलवे चाटने और हर सम्भव तरीक़े से उनकी सेवा करने, पूरी पूँजीवादी लूट की व्यवस्था के कुशल प्रबन्धन का मेहनताना माँग रहे हैं। ज़ाहिर है कि सारी पूँजीवादी लूट और उस लूट को सम्भव बनाने वाली व्यवस्था के प्रबन्धन की क़ीमत पिछले 63 वर्षों में जनता चुकाती आयी है, अब भी जनता ही चुकायेगी। यह पूरा प्रकरण भारतीय पूँजीवादी शासन के कर्ता-धर्ताओं के पूरी तरह लाज-हया छोड़कर जनता को लूटने-खसोटने पर आमादा होने का हमारी नज़रों के सामने साफ़ कर देता है। और किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

तीसरी घटना – तीसरी प्रातिनिधिक घटना थी दिल्ली में 2010 के कॉमनवेल्थ खेलों का आयोजन। असल में इस पूरे खेल आयोजन की आड़ में इस देश के पूँजीपति वर्ग के लिए उनकी सरकार ने एक 'जनता को लूट लो-खसोट लो' महामेला का आयोजन किया था। इस खेल के आयोजन में सरकारी आँकड़ों के मुताबिक़ क़रीब 80,000 करोड़ रुपये ख़र्च कर दिये गये। तमाम विकास मदों के पैसे भी इस खेल के आयोजन में ख़र्च कर दिये गये। अब यह किसी से छिपा तथ्य नहीं है कि जनता के 80,000 रुपयों की लूट के आयोजन में भ्रष्टाचार की हर वह वैरायटी मौजूद थी, जिसमें पूँजीपति वर्ग और उनकी सरकार माहिर है। ठेकों को देने में अनियमितताएँ, निर्माण-कार्य में ख़राब सामग्री लगाया जाना, खेलों से जुड़े हुए व्यक्तियों के आने-जाने के लिए हज़ारों रुपये में टैक्सी का किराया देना, उनके खाने के इन्तज़ाम में होने वाले ख़र्च में घपला, स्टेडियमों को बनाने के ख़र्च में घपला, ग़ैर-ज़रूरी इमारतों और स्टेडियमों का निर्माण, विशालकाय खेलगाँव के निर्माण में घपला, और न जाने क्या-क्या घपला! आप घपले के जिस भी सम्भव रूप के बारे में सोच सकते हैं, वह सब राष्ट्रमण्डल खेलों के दौरान हुआ। पूँजीवादी व्यवस्था में हर ऐसे जलसे में ऐसा ही भ्रष्टाचार होता है। 1982 के एशियाड के दौरान भी ऐसा ही हुआ था। और इस सारे गोरखधन्धे पर कोई सवाल उठाता है तो उसके मुँह पर "देश की इज़्ज़त" का टेप चिपका दिया जाता है। इस दुराचार, नंगी लूट, भ्रष्टाचार और चोरी-सेंधमारी-बटमारी पर कोई आवाज़ उठाये तो उसे यह कहकर चुप करा दिया जाता है कि इससे देश की इज़्ज़त ख़राब होती है। सवाल यह उठता है कि एक ऐसे खेल के आयोजन में कौन-सी इज़्ज़त है जो उस औपनिवेशिक अतीत की याद दिलाता है जो वास्तव में हमारे देश के अपमान की याद दिलाता है। राष्ट्रमण्डल में शामिल देश वे देश हैं जो कभी ब्रिटेन के गुलाम रहे थे। मेहनतकशों और आम जनता की क़ुर्बानियों के बूते पर मिली आज़ादी के 63 साल बाद देश का पूँजीपति वर्ग महारानी की बेटन (मशाल) लेकर दौड़ने में सम्मान महसूस करता है तो यह अपने आपमें सोचने की बात है। यह किस क़िस्म की इज़्ज़त है? यह तो हमारे आज़ादी के लिए क़ुर्बानी देने वाली आम मेहनतकश जनता की क़ुर्बानियों की बेइज़्ज़ती है। इसलिए इज़्ज़त का यह बड़ा बेइज़्ज़ती भरा तर्क है जो शासक वर्ग अपने भ्रष्टाचार और लूट पर उँगली उठाये जाने पर देता है।

इस राष्ट्रमण्डल खेलों की तैयारी और निर्माण की पूरी प्रक्रिया दिखला देती है कि यह किसकी व्यवस्था है और यह कैसी व्यवस्था है। खेल की तैयारियों के पूरे दौर में सर्वोच्च न्यायालय, स्वयंसेवी संगठन, मज़दूर संगठन, ट्रेडयूनियनें और यहाँ तक कि सरकारी समितियाँ तक बोलती रहीं कि निर्माण-कार्यों में लगे मज़दूरों के श्रम क़ानूनों का दिल्ली सरकार बेशर्मी से उल्लंघन कर रही है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बनायी गयी एक समिति ने बताया कि राष्ट्रमण्डल खेलों के निर्माण में लगे मज़दूरों को एक भी क़ानूनी अधिकार मुहैया नहीं है और सरकार की शह पर ठेकेदार जल्दी काम पूरा करवाने के नाम पर मज़दूरों से 14 से 16 घण्टे तक काम करवा रहे हैं, उन्हें न्यूनतम मज़दूरी नहीं दे रहे हैं, उनके काम करने की स्थितियाँ बेहद ख़तरनाक हैं, उनके बच्चों की देखभाल की कोई व्यवस्था नहीं है, वे तमाम क़िस्म की बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। कुल मिलाकर, इन मज़दूरों से गुलामों की तरह काम लिया गया। कोई अधिकार नहीं, बर्बरतम शोषण, आवाज़ उठाते ही काम से बाहर, जीने की खुराक से भी कम मज़दूरी! इस तरह से राष्ट्रमण्डल खेलों के लिए दिल्ली की चकाचौंध, आलीशान स्टेडियमों, होटलों, गेस्ट हाउसों आदि का निर्माण किया गया। और जब निर्माण पूरा हो गया तो इन्हीं मज़दूरों को दिल्ली से बाहर खदेड़ दिया गया, ताकि दिल्ली का रूप न बिगड़े! हम सिर्फ़ उनके मुनाफ़े के लिए जीते-मरते हैं। यह सच्चाई एकदम नग्न रूप में सामने थी। हम उनके लिए मुनाफ़ा कमाने की मशीन से ज़्यादा कुछ भी नहीं हैं। यह असलियत हमारी आँखों में झाँक रही थी। कॉमनवेल्थ खेलों के आयोजन की तैयारी में क़रीब सवा सौ मज़दूर मारे गये और घायल और बीमार होने वालों की कोई गिनती नहीं है।

दिल्ली में राष्ट्रमण्डल खेलों के आयोजन ने पूरे देश के मज़दूर वर्ग के सामने स्पष्ट कर दिया कि इस पूरी मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था में मज़दूरों की जान और शरीर की कोई क़ीमत नहीं है। अगर क़ीमत है तो सिर्फ़ पूँजीपतियों, बिचौलियों, ठेकेदारों, नेताओं-नौकरशाहों के मुनाफ़े की। हम तो बस इस मुनाफ़े के लिए मरने-खपने के लिए हैं! खेल की तैयारियों में ख़र्च हुए 80,000 करोड़ रुपये में पूँजीपति वर्ग के हर धड़े ने कमाई की – कारपोरेट घराने, ठेकेदार, शेयर बाज़ार, बिचौलिये, नेता, अफ़सर, पुलिस, और मीडिया। सबकी चाँदी थी। मर रहा था आम मेहनतकश। पहले तो उसकी कमाई पर खड़े सरकारी ख़ज़ाने के 80,000 करोड़ रुपये, जो कहने के लिए उसके कल्याण के लिए उससे कर के रूप में वसूले जाते हैं, पानी की तरह बहा दिये गये और अब उसकी वसूली भी करों को बढ़ाकर उसी से की जायेगी। ज़ाहिर है इसकी क़ीमत बढ़ी हुई महँगाई के रूप में देश की सबसे ग़रीब आबादी ही चुकाने वाली है। और इसकी तैयारियों के दौरान तो मज़दूरों का जितना बर्बर से बर्बर शोषण किया जा सकता था, वह किया ही गया।

●

ये तीनों घटनाएँ एक ही बात की ओर इशारा करती हैं। देश का पूँजीपति वर्ग और उसकी 'मैनेजिंग कमेटी' का काम करने वाली उसकी सरकार जनता को लूटने-खसोटने के काम में पूरी तरह बेशरम हो चुके हैं। अब वे किसी बात की सफ़ाई तक देने की ज़रूरत महसूस नहीं करते। देश की जनता आज अकल्पनीय महँगाई के तले कराह रही है, मज़दूरों का खुलेआम गुलामों की तरह शोषण किया जा रहा है, बेरोज़गारी नये रिकॉर्ड बना रही है, कुपोषण और ग़रीबी के मामले में देश अफ़्रीकी देशों तक से पीछे जा चुका है, हज़ारों बच्चे रोज़ भूख और कुपोषण से दम तोड़ रहे हैं, और दूसरी ओर देश का शासक वर्ग रंगरेलियाँ मना रहा है। वह अपनी नंगी ऐयाशी में मगन है। क्योंकि उसे भरोसा हो चला है कि इस देश की जनता दासवृत्ति का शिकार हो चुकी है। उसे लगने लगा है कि इस देश की जनता में सन्तोष करने की ज़बर्दस्त ताक़त है। हर क़िस्म के अत्याचार और लूट को वह देर-सबेर थोड़ा चूँ-चपड़ करके स्वीकर कर लेती है। उसे यह गुमान हो चला है कि इस देश के मज़दूर भयंकर निराशा और पस्तहिम्मती में हैं और उनका कोई क़ाबिल क्रान्तिकारी नेतृत्व नहीं है। वह बिखरा हुआ है, टूटा हुआ है और स्थानीय आर्थिक माँगों के लिए होने वाले संघर्षों के अलावा वह कोई राजनीतिक लड़ाई नहीं लड़ सकता। इसीलिए आज पूँजीपति वर्ग के हौसले बुलन्द हैं। उसे अब अपनी लुटेरी व्यवस्था की घिनौनी सच्चाई को छिपाने की ज़रूरत भी नहीं महसूस होती। इसलिए वह सारी लाज-शरम छोड़कर देश की जनता को नंगई के साथ लूटने पर आमादा है।

ऐसे में इस देश की मेहनतकश जनता के सामने यह सवाल है – क्या हम इस बर्बर गुलामी को स्वीकार कर लेंगे? क्या पूरी तरह नग्न हो चुकी पूँजीवादी व्यवस्था को हम अपने आने वाली पीढ़ियों को बर्बाद करने देंगे? क्या हम अपनी ही बर्बादी के तमाशबीन बने रहेंगे? या फिर हम उठ खड़े होंगे और मुनाफ़े की अन्धी हवस पर टिकी इस मानवद्रोही, आदमख़ोर व्यवस्था को तबाहो-बर्बाद कर देंगे? या फिर हम संगठित होकर इस अन्याय और असमानता का ख़ात्मा करने और न्याय और समानता पर आधारित एक नयी समाजवादी व्यवस्था का निर्माण करने की तैयारियाँ करने में जुट जायेंगे? या फिर हम एक मज़दूर इन्क़लाब के लिए एक इन्क़लाबी पार्टी के निर्माण में लग जायेंगे?

आज ये दोनों ही रास्ते हमारे सामने हैं। एक रास्ता दासवृत्ति के शिकार रीढ़विहीन कायरों और बुजदिलों का रास्ता है, जो कहता है कि सबकुछ पचा लो, सबकुछ स्वीकार लो, पीठ झुकाकर कोड़े खाने के लिए तैयार खड़े रहो!

दूसरा रास्ता उस मेहनतकश वर्ग का रास्ता है, जो पूरी दुनिया को अपने बलिष्ठ हाथों से गढ़ता है, रचता है और अपने मज़बूत-चौड़े कन्धों पर सभ्यता के रथ को खींचकर यहाँ तक लाया है। यह रास्ता है पूँजीवादी लूट

(पेज 12 पर जारी)

सही फ़रमाया प्रधानमन्त्री महोदय!

यह व्यवस्था अनाज सड़ा सकती है लेकिन भुखमरी से मरते लोगों तक नहीं पहुँचा सकती है!

पीपुल्स यूनियन फ़ॉर सिविल लिबर्टीज़ की जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय ने हज़ारों टन अनाज के सड़कर बरबाद हो जाने पर सरकार को "फटकार" लगायी और कहा कि सड़ रहे अनाज को ग़रीबों में बाँट दिया जाये। ज्ञात हो कि 19 अक्टूबर को भारत सरकार ने माना कि केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के गोदामों को मिला दिया जाये तो क़रीब 1 लाख टन अनाज सड़ गया है। उच्चतम न्यायालय की फटकार पर भारत के अर्थशास्त्री प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह ने अपनी अर्थविद्या का इस्तेमाल करते हुए यह स्पष्ट कर दिया कि सरकार इस बाबत कोई प्रतिबद्धता नहीं जता सकती है। साथ ही प्रधानमन्त्री महोदय ने न्यायपालिका को चेताया कि वह सरकार के कामकाज में हस्तक्षेप करने का प्रयास न करे। उसका काम संसद द्वारा बनाये गये क़ानूनों की व्याख्या करना और उसके लागू होने या न होने के बारे में पैदा होने वाले विवादों का निपटारा करना है। वह शासन के मसलों में दख़ल न दे। आगे "मानवतावादी" प्रधानमन्त्री ने कहा कि सरकार के लिए सड़ रहे अनाज को ग़रीबों में वितरित कर पाना मुमकिन नहीं है। यानी कि अनाज सड़ जाये तो सड़ जाये, वह भूख से मरते लोगों के बीच नहीं पहुँचना चाहिए। लेकिन क्यों? सामान्य बुद्धि से यह सवाल पैदा होता है कि जिस समाज में लाखों लोग भुखमरी और कुपोषण के शिकार हों वहाँ आख़िर क्यों हर साल लाखों टन अनाज सड़ जाता है, उसे चूहे खा जाते हैं या फिर न्यायालय ही उसे जला देने का आदेश दे देता है? हाल में ही एक अन्तरराष्ट्रीय एजेंसी की रिपोर्ट आयी जिसमें यह बताया गया कि भुखमरी के मामले में भारत 88 देशों की तालिका में 67वें स्थान पर है। श्रीलंका, पाकिस्तान, बांग्लादेश, भूटान और अफ़्रीका के कई बेहद ग़रीब देश भी भुखमरी से ग्रस्त लोगों की संख्या में भारत से पीछे हैं। पूरी दुनिया के 42 प्रतिशत कुपोषित बच्चे और 30 प्रतिशत बाधित विकास वाले बच्चे भारत में पाये जाते हैं। लेकिन इसके बावजूद इस देश में लाखों टन अनाज गोदामों में सड़ जाता है। आख़िर क्यों? ऐसा कौन-सा कारण है?

आइये मनमोहन सिंह का कारण सुनते हैं। माननीय प्रधानमन्त्री महोदय कहते हैं कि अगर यह सड़ रहा अनाज भूखे लोगों के बीच बाँट दिया गया तो किसानों के पास अनाज का उत्पादन बढ़ाने का कोई कारण नहीं रह जायेगा! क्या अद्भुत तर्क है! मनमोहन सिंह ने वाक़ई साबित कर दिया है कि उन्होंने लन्दन स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स में आम मेहनतकश जनता को मूर्ख बनाने के लिए पूँजीवादी अर्थशास्त्र की ज़बर्दस्त पढ़ाई की है! लेकिन इस दिव्य तर्क के जवाब में एक सवाल दिमाग़ में आता है। किसके लिए अनाज उत्पादन बढ़ाया जाये, जब उत्पादित अनाज ही गोदामों में सड़ जा रहा है? आज जितना अनाज पैदा हो रहा है वह भारत की जनसंख्या को पोषणयुक्त भोजन देने के लिए पर्याप्त है। लेकिन वही अगर गोदामों में सड़ जा रहा है और सरकार उसको वितरित करने से इंकार कर रही है तो आख़िर अनाज का उत्पादन बढ़ाया किसके लिए जाये? साफ़ है कि मनमोहन सिंह ने यह कुतर्क किसी और सच्चाई को छिपाने के लिए दिया था। यह सच्चाई क्या है?

मनमोहन सिंह पूँजीवादी व्यवस्था के सिद्धान्तकार होने के नाते अच्छी तरह से जानते हैं कि पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था में उत्पादन समाज की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए नहीं बल्कि मुनाफ़े के लिए होता है। सारा उत्पादन इस बात पर निर्भर करता है कि उसे बाज़ार में मुनाफ़े पर बेचा जा सकता है या नहीं। बाज़ार में माँग कितनी होगी, यह इससे तय होता है कि जनता का कितना बड़ा हिस्सा ख़रीदने की क्षमता रखता है और कितना ख़रीदने की क्षमता रखता है। पूँजीवादी उत्पादन अपनी प्रकृति से ही ऐसा होता है जो जनता के बड़े हिस्से, यानी मज़दूरों की ख़रीदने की ताक़त को कम करता जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि निजी स्वामित्व और परस्पर प्रतियोगिता की पूँजीवादी व्यवस्था में हर पूँजीपति अपने मुनाफ़े को बढ़ाने के लिए उत्पादन की लागत को घटाना चाहता है। जो लागत जितनी घटा पाता है उसके मुनाफ़े का मार्जिन उतना अधिक होता है। लागत को घटाना तभी सम्भव होता है जब उत्पादन को अधिक से अधिक बड़े पैमाने पर किया जाये, श्रम की उत्पादकता को अधिक उन्नत मशीनें लगाकर बढ़ाया जाये और साथ ही मज़दूरों की मज़दूरी को काम के घण्टे बढ़ाकर और बढ़ती उत्पादकता की तुलना में मज़दूरी को घटाकर और मुद्रास्फीति के ज़रिये बहुसंख्यक आबादी की वास्तविक आय को घटाकर मज़दूर वर्ग को अधिक से अधिक दरिद्र बनाया जाये। इससे लागत घटती है और उत्पादन बढ़ता है। लेकिन साथ ही बड़ी आबादी उस उत्पादन को बाज़ार में ख़रीद पाने की क्षमता खोती जाती है। नतीजा यह होता है कि उत्पादन डम्प पड़ा रह जाता है। लेकिन इसके बावजूद पूँजीपति वर्ग उस उत्पादन को ग़रीब जनता में वितरित नहीं कर सकता, क्योंकि अगर वह ऐसा करेगा तो उत्पाद की प्रति इकाई क़ीमत घट जायेगी क्योंकि आपूर्ति का पहलू माँग के पहलू पर हावी हो जायेगा। इसलिए क़ीमतों को गिरने से बचाने के लिए पूँजीपति वर्ग को यह स्वीकार होता है कि केवल 30 फ़ीसदी लोग ही उस अनाज को बढ़ी हुई क़ीमतों पर ख़रीदें और 70 फ़ीसदी लोग भुखमरी और कुपोषण की स्थिति में रहें। अनाज की क़ीमतों को लागत से कई गुना बढ़ाकर पूँजीपति वर्ग इस बात की भरपाई करने की कोशिश करता है कि कुल लागत से अधिक मुनाफ़ा कमाया जा सके। लेकिन यह भी सम्भव नहीं हो पाता है क्योंकि बढ़ी हुई क़ीमत चुका पाने की स्थिति समाज के आम मध्यवर्ग तक के लिए मुश्किल होती जाती है, जैसा कि आज की महँगाई में हुआ भी है। दाल, तेल, दूध और सब्ज़ी की क़ीमतें धीरे-धीरे देश के मध्यवर्ग के निचले हिस्से की पहुँच से भी बाहर होती जा रही हैं। नतीजतन, पूँजीवाद का संकट बढ़ता जाता है। लेकिन इन सबके बावजूद उपभोग को बढ़ाने का कोई भी प्रयास पूँजीपति वर्ग नहीं कर सकता है। क्योंकि संकट के गहराने के साथ यह उसके साथ और अधिक मुश्किल होता जाता है कि वह बेकार पड़े उत्पादन को, जैसे कि सड़ता हुआ अनाज, जनता के बीच वितरित कर पाये। अनाज के इस रूप में वितरित होने पर पूँजीपति वर्ग का घाटा तेज़ी से बढ़ेगा क्योंकि कोई भी उपभोक्ता उससे अनाज ख़रीदने की बजाय, निशुल्क वितरण वाले अनाज को ख़रीदेगा। ऐसे में खाद्यान्न उत्पादन और संसाधन लगे पूँजीपति और धनी किसान तबाह हो जायेंगे। इस तरह हम देख सकते हैं कि पूँजीवाद अतिउत्पादन के संकट के पैदा होने के बावजूद ऐसे उत्पादन सम्बन्धों पर खड़ा होता है जो उसे इस अतिउत्पादन को (जो कि वास्तव में "अतिउत्पादन" नहीं होता है) ग़रीबों में वितरित करने की इजाज़त नहीं देता है। इस प्रकार पूँजीवाद एक तरफ़ वस्तुओं की विशाल दुनिया खड़ी करता है और दूसरी तरफ़ दरिद्रों और वंचितों की। यह वस्तुओं की विशाल दुनिया जब बहुत अधिक बढ़ जाती है तो इसे नष्ट कर दिया जाता है (युद्धों के ज़रिये, या प्राकृतिक आपदाओं से बचाव न करके) या फिर नष्ट होने दिया जाता है (जैसे कि अनाज को सड़ने दिया जाना)।

तो हम देख सकते हैं कि मनमोहन सिंह ने एक पूँजीवादी व्यवस्था के नीतिकार होने के नाते पूँजीवादी व्यवस्था की इस अक्षमता को साफ़ तौर पर न्यायपालिका के सामने रख दिया कि अनाज सड़ जाये तो सड़ जाये, भूखों तक नहीं पहुँचाया जा सकता है। क्योंकि इससे भूख से मरते लोगों की जान तो बचेगी लेकिन पूँजीपति वर्ग को घाटा और तबाही का सामना करना पड़ेगा। और एक पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर यह सम्भव ही नहीं है क्योंकि एक पूँजीवादी सरकार कभी भी यह होने नहीं देगी, भले ही उसके लिए उसे लाखों ग़रीबों को हर साल भूख की बलि चढ़ाना पड़े।

विडम्बना की बात है कि भाकपा, माकपा और भाकपा (माले) के नक़ली वामपन्थी बुद्धिजीवी और अर्थशास्त्री इस बात को नहीं समझ पा रहे हैं जिसे मनमोहन सिंह और शरद पवार आसानी से समझ रहे हैं। सीताराम येचुरी, उत्सा पटनायक, प्रभात पटनायक, जयति घोष, सी.पी. चन्द्रशेखर जैसे तमाम अर्थशास्त्री सरकार को अपनी वितरण व्यवस्था दुरुस्त करने और अनाज के वितरण को बेहतर बनाने के रास्ते सुझा रहे हैं। क्या वास्तव में वे मानते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे के भीतर अनाज को ग़रीबों तक पहुँचाया जा सकता है? नहीं! वे मार्क्सवादी अर्थशास्त्र और पूँजीवादी समाज के आधार को अच्छी तरह समझते हैं। बस दिक़्क़त यह है कि वे इस ज्ञान को भी पूँजीवाद की सेवा में लगाते हैं। ये वास्तव में मज़दूर वर्ग के मीर ज़ाफ़र, विभीषण और जयचन्द हैं। सरकार ने इस सबकी तरह-तरह की समितियाँ बना रखी हैं जो बीच-बीच में सरकार को इस बारे में सुझाव देती रहती हैं कि पूँजीवादी समाज के गहराते अन्तरविरोधों पर पानी के छींटों का छिड़काव कैसे किया जाये। वे अच्छी तरह से जानते हैं कि सड़ रहे अनाज को ग़रीबों के बीच पूरी तरह से वितरित कर पाना पूँजीवादी व्यवस्था के लिए असम्भव है। इसलिए वे सुझाव दे रहे हैं कि थोड़ा-सा भी अनाज वितरित कर दिया जाये तो पूँजीवाद की इज़्ज़त थोड़ी बच सकती है और उसकी निर्मम सच्चाई को जनता के सामने पूरी तरह से आने से कुछ समय के लिए रोका जा सकता है। इसलिए सारे संसदीय वामपन्थी एक कोरस में सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को बेहतर बनाने की माँग उठाते हैं। निश्चित रूप से सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को दुरुस्त करने के लिए संघर्ष करना होगा। लेकिन हमें इस गफ़लत में नहीं रहना चाहिए कि पूँजीवादी व्यवस्था को तबाह कर सर्वहारा सत्ता की स्थापना किये बिना, महज़ सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को ठीक-ठाक करके भुखमरी और कुपोषण की समस्या का समाधान हो जायेगा। इससे बस मामूली-सी फ़ौरी राहत मिल सकती है। इसीलिए यह एक तात्कालिक माँग है और इस पर संघर्ष करते हुए भी मज़दूर वर्ग को इस सच्चाई से अवगत कराना आवश्यक है कि हमारी लड़ाई सत्ता की है, और जब तक हम समाजवाद और सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना नहीं करते और कल-कारख़ाने, ज़मीन और समस्त प्राकृतिक संसाधन समेत समस्त उत्पादन के साधनों पर मेहनतकश वर्ग का सामूहिक मालिकाना क़ायम नहीं करते, हमारी भूख, हमारे कुपोषण, हमारी ग़रीबी, हमारी बेरोज़गारी की समस्या का समाधान नहीं हो सकता है। यहीं पर संसदीय वामपन्थी अपनी ग़द्दारी को नंगा कर डालते हैं। वे पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध मज़दूर इन्क़लाब की ज़रूरत को नकारते हैं और पूँजीवादी व्यवस्था को अपनी पैबन्दसाज़ी से बचाने में लगे रहते हैं। मज़दूर वर्ग के हिरावल को इन ग़द्दारों की असलियत को पूरी मज़दूर जनता में ले जाना होगा।

पूँजीवाद के स्पष्टवादी प्रतिनिधि (मनमोहन सिंह, मोण्टेक सिंह आहलूवालिया, शरद पवार, आदि) से लेकर उसकी नंगई को ढँकते-तोपते और उसके बर्बर कुकृत्यों के लिए जनता से 'सॉरी-सॉरी' कहते हुए पीछे-पीछे चलने वाले संसदीय वामपन्थियों तक की सच्चाई एक ही बात की ओर इशारा कर रही है। यह दिन की रोशनी की तरह साफ़ है कि यह पूरी पूँजीवादी व्यवस्था पन्द्रह फ़ीसदी लोगों के मुनाफ़े की ख़ातिर 85 फ़ीसदी जनता के जीवन को नर्क बनाती है; यह मुट्ठी भर अमीरज़ादों की लूट और मेहनतकश जनता की बरबादी पर टिकी एक अमानवीय, अवैज्ञानिक, अतार्किक, अनैतिहासिक और आदमख़ोर व्यवस्था है। इसकी जगह इतिहास का कूड़ेदान है और इसे वहाँ पहुँचाने का काम मेहनतकश करेगा। आज देश के मेहनतकश अवाम को इसी काम के लिए तैयार होना है।

● सुजय

एक ही रास्ता—मज़दूर इंकलाब! मज़दूर सत्ता!

(पेज 11 से आगे)

और शोषण के विरुद्ध विद्रोह का रास्ता! एक ऐसी व्यवस्था बनाने के लिए मज़दूर इन्क़लाब का रास्ता जिसमें उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढाँचे पर मेहनतकश वर्गों का नियन्त्रण हो और फ़ैसला लेने की ताक़त उनके हाथों में हो! देश भर के मज़दूरों को संगठित करके एक इन्क़लाबी मज़दूर वर्ग की पार्टी बनाने का रास्ता!

यह काम हम कल पर नहीं टाल सकते हैं। यह हमें अभी इसी वक़्त तय करना होगा कि हम पूँजीवाद की ग़ुलामी को स्वीकार करेंगे या इसे उखाड़ फेंकेंगे! क्योंकि पूँजीवाद इससे ज़्यादा नंगा, बर्बर और मानवद्रोही नहीं हो सकता और हम इससे ज़्यादा तबाहो-बर्बाद नहीं हो सकते। यह काम करने की ताक़त और ज़िम्मेदारी मुख्य तौर पर मज़दूर वर्ग की है। इतिहास ने हमारे कन्धों पर इस ज़िम्मेदारी को रखा है कि इसके पैरों में बेड़ी बन चुके मुनाफ़ाख़ोर पूँजीवाद की क़ब्र खोदें और उसे उसमें पहुँचा दें! मानवता की मुक्ति और आगे की प्रगति का रास्ता मज़दूर इन्क़लाब और मज़दूर सत्ता के रास्ते ही जाता है। हमारे सामने यही एकमात्र विकल्प है, एकमात्र रास्ता है!

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफ़िक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित।
कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन, लखनऊ। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006